

ॐ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गो जयतः ॐ



ॐ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वतुष्टिः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

नोप्यापयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

ॐ अहेतुव्यप्रतिहता यथात्मप्रासुसीदति ॥



सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । सव धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । भक्ति अधोक्षज की अहेतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष २ } गौराब्द ४७०, मास—दामोदर२८, वार—गर्भोदशाथी } संख्या ६७  
शुक्रवार, ३० कार्तिक, सम्वत् २०१३, १६ नवम्बर १९५६

## श्रीश्रीदामोदराष्टकम्

[श्रीश्रीकृष्णद्वैपायन-वेदव्यास-विलिखितं]

नमामीश्वरं सच्चिदानन्द-रूपं लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम् ।  
यशोदा - भियोल्लखलाद्धावमानं परामृष्टमत्यन्ततोद्वृत्य गोप्या ॥ १ ॥  
रुदन्तं मुहुर्नेत्र-युग्मं मृजन्तं कराम्भोज-युग्मेन सातङ्क-नेत्रम् ।  
मुहुः श्वास-कम्पत्रिरेखाङ्क-कण्ठस्थित-प्रैवं दामोदरं भक्तिवद्धम् ॥ २ ॥

जिनके कपोलोंपर मकराकृत कुण्डल क्रीड़ा करते हैं, जो गोकुल नामक अप्राकृत चिन्मय धाममें सुशोभित हैं, जो (दधिभाण्डको फोड़नेके अपराध हेतु) माँ यशोदाके भयसे ऊखलपरसे कूदकर अत्यन्त वेगसे भाग छूटते हैं और जिन्हें उसी दशामें नन्दरानी उनसे भी वेगपूर्वक दौड़कर पकड़ लेती हैं, उन सच्चिदानन्द-विग्रह सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

जननी के तर्जनसे भयभीत होकर जो रोते हुए बार-बार अपने दोनों नेत्रोंको युगल हस्तकमलोंसे मसल रहे हैं, जिनके नेत्र-युगलकी चितवन अतिशय भीतिपूर्ण है, बार-बार सुबकनेके कारण जिनके त्रिरेखायुक्त कंठमें पड़ी हुई मोतियोंकी माला कम्पित हो रही है और जिनका उदर (माँ यशोदाके वात्सल्य भक्तिके बल से) रस्सीसे बँधा हुआ है; उन सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीदामोदरकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥



इतीदृक् स्व-लीलाभिरानन्द-कुण्डे  
स्व-शोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।  
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं  
पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति बन्दे ॥३॥

वरं देव ! मोक्षं न मोक्षार्थि वा  
न चान्यं वृणोऽहं वरेशादपीह ।  
इदन्ते वपुर्नाथ ! गोपाल-बालं  
सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः ॥४॥

इदन्ते मुखाम्भोजमव्यक्त-नीलै-  
वृत्तं कुन्तलैः स्निग्ध-रक्तैश्च गोप्या ।  
मुहुश्चुम्बितं विम्ब-रक्ताधरं मे  
मनस्याविरास्तामलं लज्ज-लाम्बैः ॥५॥

नमो देव ! दामोदरानन्त ! विष्णो ।  
प्रसीद प्रभो ! दुःख-जालाब्धि-मग्नम् ।  
कृपादृष्टि-वृष्ट्यातिदीनं वतानु-  
गृहाणेश ! मामज्ञमेध्यस्ति-दृश्यः ॥६॥

कुबेर/त्मजौ बद्ध-मूर्त्त्यैव यद्वत्  
त्वया मोचितौ भक्ति-भाजौ कृतौ च ।  
तथा प्रेम-भक्ति स्वकां मे प्रयच्छ  
अ मोक्षे महो मेऽस्ति दामोदरेह ॥७॥

जो अपनी ऐसी लीलाओंके द्वारा गोकुलवासियों-  
को आनन्द-सरोवरमें नित्यकाल निमग्न रखते हैं  
तथा जो ऐश्वर्यपूर्ण ज्ञानी भक्तोंके निकट 'मैं अपने  
ऐश्वर्यहीन प्रेमी भक्तों द्वारा जीत लिया गया हूँ'—  
इस प्रकारका भाव प्रकाश करते हैं, उन दामोदर  
कृष्णकी मैं पुनः-पुनः प्रेमपूर्वक शत-शत बन्दना  
करता हूँ ॥३॥

हे देव ! यद्यपि आप वर देनेमें सब प्रकारसे  
समर्थ हैं, फिर भी मैं आपसे वर रूपमें न तो मोक्षकी  
याचना करता हूँ और न मोक्षकी परम अवधिरूप  
श्रीवैकुण्ठ आदि लोकोंकी प्राप्ति ही चाहता हूँ । न मैं  
भ्रवण और कीर्त्तन आदि नवधा भक्तिद्वारा प्राप्त  
किया जाना वाला कोई दूसरा वरदान ही आपसे  
माँगता हूँ । हे नाथ मैं तो आपसे इतनी ही कृपाकी  
भीख माँगता हूँ कि आपका बालगोपाल रूप  
मेरे हृदयमें निरन्तर अवस्थित रहे, मुझे और वस्तुओं  
से क्या प्रयोजन है ? ॥४॥

हे देव ! अत्यन्त श्यामलवर्ण एवं कुङ्कु-कुङ्कु  
लालिमा लिए हुए चिकने और घुँभराले बालोंसे  
घिरा हुआ तथा माँ यशोदाके द्वारा बारबार चूमा  
हुआ तुम्हारा मुखदा और पके हुए विम्बफलके  
सदृश लाल-लाल अधर-पल्लव मेरे हृत्पटलपर सदा  
धिरकते रहें, मुझे लाखों प्रकारके दूसरे लाभोंसे कोई  
प्रयोजन नहीं है ॥५॥

हे देव ! हे दामोदर ! हे अनन्त ! हे विष्णो !  
तुम्हें प्रणाम है । प्रभो ! मुझपर प्रसन्न होओ एवं  
दुःख-समूह रूप समुद्रमें डूबे हुए मुझ अति दीन  
और अज्ञ जीवको कृपाकर उद्धार कर दो तथा  
कृपा-दृष्टिकी वर्षासे निहाल कर मेरे नेत्रगोचर  
होओ ॥६॥

हे दामोदर ! जिस प्रकार तुमने अपने दामोदर  
रूपसे ऊखलमें बँधे रहकर भी कुबेरके दोनों पुत्रोंको  
वृत्त-योनिसे उद्धार तो किया ही, साथ-ही-साथ उन्हें  
अपनी भक्ति भी प्रदान की थी, उसी प्रकार मुझे भी  
अपनी निजस्व प्रेम-भक्ति दान करो—यही मेरा एक  
मात्र आग्रह है । किसी भी अन्य प्रकारके मोक्ष के  
लिए मेरा तनिक भी आग्रह नहीं है ॥७॥

नमस्तेऽस्तु दास्यते स्फुरद्वापु-धाम्ने  
स्वर्गाभादरायाथ त्वश्वस्य धाम्ने ।  
नमो राधिकायै त्वदीय-प्रियायै  
नमोऽनन्त-लीलाय देवाय तुभ्यम् ॥८॥

(हे दामोदर!) तुम्हारे उदरको बाँधनेवाली महारज्जुको प्रणाम है, निखिल ब्रह्मतेजके आश्रय और सम्पूर्ण विश्वके आधारभूत तुम्हारे उदरको नमस्कार है, तुम्हारी प्रियतमा श्रीराधारानीके श्रीचरणोंमें मेरा बारम्बार प्रणाम है और तुम्हारे अलौकिक लीला-विलासको भी मेरा शत-शत प्रणाम है ॥८॥

## श्रीनाथमुनि

जन्म, काल और श्रीराजगोपाल देवका  
कृपादेश लाभ

दक्षिण प्रदेशमें तांजीर और चोल राज्योंके बीचले भूभागको 'मध्यदेश' कहते हैं। वहाँ बीर-नारायण नामक एक गाँवमें ईश्वरभट्ट नामक एक द्राविड़ ब्राह्मण रहते थे। अनन्ताचार्य द्वारा रचित 'प्रपञ्चामृत' ग्रन्थके अनुसार ४५ शकाब्दमें जेठी पूर्णिमाके दिन विश्वक्सेनके अंशसे उनको एक पुत्र पैदा हुआ। पीछे वही पुत्र श्रीमन्नाथमुनिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। थोड़ी ही आयुमें नाथमुनि सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारंगत होकर अपने ग्राम्य देवता श्रीराज-गोपाल देवकी सेवा करने लगे। उपनयन आदि वैदिक संस्कारोंको विधिवत् प्राप्तकर गृहस्थ धर्मका पालन करने लगे। कुछ ही दिनोंके बाद उनके हृदयमें मथुरा आदि उत्तर भारतके भगवत्धामोंके दर्शन तथा तत्तत् तीर्थ स्थानोंके श्रीविग्रहोंकी सेवा करनेकी तीव्र उत्कंठा पैदा हुई। उन्होंने श्रीराजगोपाल देवके श्रीचरणोंमें अपनी प्रार्थना निवेदन की। श्रीराज-गोपाल देवने भी उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

तीर्थ भ्रमण

श्रीगोपालदेवकी आज्ञा पाकर नाथमुनि अपने परिवार और बन्धु-बान्धवोंके साथ उत्तर भारतके तीर्थस्थानोंकी यात्राके लिए निकल पड़े। रास्तेमें

पुष्करके तटपर बराहदेवका दर्शन कर गोपपुरी पहुँचे। वहाँसे वामन तीर्थमें स्नान तथा त्रिविक्रमका दर्शन कर घटिकाचल उपस्थित हुए। वहाँसे बेंकटा-चलमें रमापतिके चरणोंकी वन्दना करनेके उपरान्त गरुड़ पर्वतपर अहोबल-नृसिंहका दर्शन कर पाण्डुरङ्ग प्रदेशमें विठ्ठलदेव और कुम्भक्षेत्रमें कुर्मदेवको क्रमशः प्रणाम करते हुए श्रीधाम मथुरामें उपस्थित हुए। फिर माथा तीर्थमें मधुसूदनका दर्शन कर गोमन्त पर्वतकी ओर चल पड़े। वहाँसे चित्रकूट पर्वत पर श्रीरामचन्द्रजीके चरणचिन्होंकी वन्दना कर गंगा-सागर उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण लीलास्थली गोवर्द्धन और वृन्दावन तथा श्रीरामचन्द्रकी क्रीडास्थली अयोध्याका दर्शन कर वे आनन्दसागरमें निमग्न हो गए। श्रीगोवर्द्धनके अप्राकृत सौन्दर्यका दर्शनकर तन-मनकी सुधि विसार कृष्णकी सेवामें ही दिन रात मस्त रहने लगे।

स्वप्नादेश और स्वदेशकी यात्रा

एक दिन रातके समय श्रीगोवर्द्धनके शिखरपर जब नाथ मुनि कृष्ण-सेवाके सुखमें विभोर हो रहे थे, धीरे-धीरे सो पड़े और स्वप्नमें श्रीराजगोपालदेव का दर्शन किये। राजगोपालदेव उन्हें गोवर्द्धन छोड़ कर बीरनारायणपुर लौटनेका आदेश दे रहे थे। नींद खुलने पर वे अपने इष्टदेवकी आज्ञा मान कर

श्रीगोवर्द्धनाधिपतिसे आज्ञा लेकर परिवारवर्गके साथ स्वदेशकी ओर लौट पड़े।

### वापसी यात्रामें तीर्थ-दर्शन

रास्तेमें उन्होंने वेदान्तियोंकी वासभूमि वाराणसी क्षेत्र होकर नीलाचलमें श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करते हुए पुनः सिंहाचलमें अहोबल-नृसिंहदेवका दर्शन किया। श्रीनृसिंहदेवकी यथोचित वन्दना कर वेङ्कटाचलपतिको प्रणामपूर्वक घटिकाचलमें पुनः श्रीनृसिंहदेवके चरणकमलोंका अर्चन किया। वहाँसे गृध्न सरोवरपर पहुँच कर योगीराटका अभिवादन कर काञ्ची नगर पहुँचे। काञ्चीमें वरदराजकी वन्दना कर नाना तीर्थों और देवोंका दर्शन कर महीसारमें श्रीजगन्नाथजीके दर्शन किये और वहाँसे गजस्थल उपस्थित हुए। गजस्थलका दर्शन कर वहाँसे कैरविनी के तटपर पार्थसारथि, रङ्गेश और राघव आदिका दर्शन कर मयुरनगर पहुँचे। मयुरनगरमें श्रीकेशवजी का दर्शन कर तोय पर्वत, पुण्डरीक सरोवर, महावली-पुर, चोलदेश और कुम्भकोण आदि तीर्थोंका दर्शन करते हुए बीरनरायणपुरमें उपस्थित हुए।

इस प्रकार नाना तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए बीरनरायणपुर लौट आए और समस्त वैष्णवोंको- जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, नाना तीर्थोंसे संप्रहीत प्रसाद आदि दिये। देव-दुर्लभ प्रसाद पाकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

### कारिसार द्वारा रचित ग्रन्थकी खोज और उसके सम्बन्धमें ईश्वरकी आज्ञा

एक समय श्रीनाथमुनिने कुछ वैष्णवोंको 'कारिसार' द्वारा रचित 'श्रीकृष्णगाथा' का पाठ करते देखा। उनका पाठ सुनकर वे बड़े ही पुलकित हुए। उन्होंने उसी समय उन सम्पूर्ण गाथाओंका संग्रह करनेका निश्चय कर लिया। उन्होंने उन पाठकोंसे उक्त ग्रन्थके सम्बन्धमें ज्ञान-धीनकी। परन्तु कोई सन्तोपजनक उत्तर न पाकर उस ग्रन्थकी खोज करने के लिए कुम्भकोणके लिए यात्रा की।

कुम्भकोण पहुँचकर वे अष्टांग-योगका अभ्यास करने लगे। कुछ दिनों तक निरन्तर योगका साधन करने पर भगवान्ने कृपा कर उनको दर्शन दिया और प्रेमपूर्वक बोले—वत्स ! तुम शीघ्र ही ताम्रपर्णी के तटपर बसी हुई कुरका नगरी चले जाओ। वहाँ मेरे परम प्रिय भक्त शठकोप अपने दिव्य शरीर से वास कर रहे हैं। वे ही इस ग्रन्थके रचियता हैं। वहीसे तुम यह ग्रन्थ प्राप्त करना।

### मूल ग्रन्थके ध्वंस और उसके पुनरुद्धारका इतिहास

भगवान्की आज्ञानुसार नाथ मुनि कुरकानगरीमें पहुँचकर आदिनाथके चरणोंकी वन्दना कर इमलीके पेड़के नीचे श्रीशठकोप और उनके प्रधान शिष्य मधुर कविकी श्रीमूर्तियों तथा मधुर कविके शिष्य पराङ्क शदासको बैठे देखा। उन्होंने पराङ्कशदाससे पूछा— 'महात्मन् ! क्या आपने शठकोपदासद्वारा रचित 'सूक्ति' को देखा है ? क्या इस समय वह 'सूक्ति' ग्रन्थके आकारमें है ? यदि है तो वह कहाँ मिल सकती है ? पराङ्कशदासने उत्तर दिया—'बहुत दिन पहले श्रीशठकोपदासने जिस प्रबन्ध (पद्यमय काव्य) की रचना की थी, वह महाप्रबन्ध आजकल कहीं भी उपलब्ध नहीं है। प्राचीन कालमें भगवान् शठकोप सम्पूर्ण वेदोंका सार संग्रह कर द्राविड़ भाषामें चार प्रबन्ध लिखे थे। फिर 'सहस्र गीति' नामक एक अत्यन्त उत्कृष्ट काव्यकी रचना कर उसे अपने शिष्य मधुर कविको पढ़ाकर नित्यधामको चले गये। उस समय उस ग्रन्थको पाठ कर अनेक लोग अपने-अपने पापोंसे मुक्ति प्राप्त कर परलोकमें गमन करने लगे। मूर्ख लोगोंने समझा कि उस ग्रन्थका पाठ करनेसे लोगोंकी मृत्यु हो जाती है। अतएव उक्त ग्रन्थको नष्ट पर करने उतारू हो गए और एक दिन तो उसे ताम्रपर्णी के गर्भमें सौंप कर ही सुखीकी साँस ली। सारी-की-सारी पुस्तक नष्ट हो गयी, केवल मात्र उसके एक पत्रकी किसी प्रकार रक्षा की जा सकी थी जिसमें से कुल १० श्लोकोंका पुनरुद्धार किया जा

सका था। इस प्रकार उसी समयसे जगत्में द्राविड़ आम्नायका पाठ अत्यन्त दुर्लभ हो गया है। शठकोप की रचनाके वे दस श्लोक यहाँ आज भी संरक्षित हैं। शठकोपके शिष्य मधुर कविने उक्त ग्रन्थकी फिर से रचना की है। मैंने उन्हींसे इस ग्रन्थको पाया है। तुम मंत्र प्रहण करो और भक्तिपूर्वक बारह हजार स्तव पाठ करो। ऐसा करनेसे तुम्हारे ऊपर शठकोप की कृपा हो सकेगी।

### ग्रन्थ और अप्राकृत विग्रह प्राप्ति का इतिहास

श्रीपराङ्मुखाके उपदेशानुसार श्रीनाथमुनिने स्तव पाठ करना आरम्भ किया। कुछ ही दिनोंमें उनको अपने अभीष्ट ग्रन्थ—‘तत्त्वत्रय’ और ‘रहस्यत्रय’ की प्राप्ति हुई। कुरकानगरमें रहते समय उन्होंने भट्टाचार्य के निकट अप्राकृत श्रीमूर्ति प्राप्त करनेका इतिहास और भविष्यमें होनेवाले आचार्योंके सम्बन्धमें जानने की अभिलाषा व्यक्त की थी। उसके उत्तरमें उन्हें मालूम हुआ कि भगवान्ने किसी शिल्पीको दर्शन देकर अपने रूपके अनुरूप श्रीमूर्ति बनाकर श्रीनाथ मुनिको अर्पण करनेकी आज्ञा दी है। भगवान्की आज्ञा पाकर उस कलाकारने दूसरे दिन प्रातःकाल भगवान्की श्रीमूर्ति तैयार कर श्रीनाथ मुनिको अर्पण किया।

श्रीनाथमुनि परलोक गमनसे पूर्व पद्माक्ष नामक अपने एक शिष्यको उक्त श्रीमूर्तिका भार सौंप गए थे। पद्माक्षने उसे राममिश्रको दिया। वही श्रीविग्रह राममिश्रसे यामुनाचार्यको, और यामुनाचार्यसे गोष्ठी-पूर्णको मिला था। फिर गोष्ठीपूर्णने उस मूर्तिका सेवा-भार अपनी कन्याको सौंपा था। इस तरह शिष्य क्रमसे उस श्रीविग्रहकी सेवा चलती आ रही थी कि श्रीरामानुजाचार्यके मंत्र प्रहणके समय हठात् वे विग्रह अन्तर्धान हो गए।

### गोस्वामियोंके ग्रन्थोंमें श्रीनाथमुनिके ग्रन्थोंकी प्रशंसा

श्रीनाथ मुनि कुछ दिनों तक कुरका नगरमें रहे थे। पीछे गोपलादेवकी आज्ञानुसार फिर वीरनारायणपुरमें लौट आए और स्थायी रूपसे वहीं वास करने लगे। इनके दस शिष्य थे, जिनमें पद्माक्ष ही प्रधान थे। गोस्वामियोंके ग्रन्थोंमें भी श्रीनाथमुनि द्वारा रचित ग्रन्थोंकी सूत्र प्रशंसा की गयी है। श्रीरामानुज सम्प्रदायके प्राचीन आचार्योंमें श्रीनाथमुनि एक प्रधान और प्रसिद्ध आचार्य माने जाते हैं।

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

## प्रवृत्ति और निवृत्ति

( पूर्व प्रकाशित वर्ष २, संख्या ५, पृष्ठ ३६३ से आगे )

### वैष्णवोंके कृपापात्र कौन हैं ?

नारीका नृत्य दर्शन कर जिनका हृदय आनन्दसे उछलने लगता है, मादक द्रव्योंका सेवन कर जिनका मस्तिष्क विविध प्रकारके इन्द्रत्वके भोगकी कल्पनाओंमें व्यस्त हो उठता है, प्राणियोंका मांस भक्षणकर जिनकी रसना तृप्ति बोध करती है और द्वेष-हिंसां

जो सुख अनुभव करते हैं, वे ही कृपाके यथार्थ पात्र हैं। हे भगवान्के प्रिय भक्तों ! आप लोग ऐसे व्यक्तियोंके पिता हैं, भाई हैं और परम बन्धु हैं। यदि कलहके डरसे आपलोग उनकी उपेक्षा करेंगे, तो उनका उद्धार कौन करेगा ? वे लोग तो उन्मत्त होकर विषयरूप पङ्कमें लुढ़कते जा रहे हैं, आप लोग उन्हें अभय

प्रदान करें। श्रीमद्भागवतमें ऐसा स्पष्ट निर्देश दिया गया है—

सर्वे वेदारच यज्ञरच तपो दानानि चानघ ।

जीवाभय-प्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥

( श्रीमद्भा० ३।७।४१ )

—पुण्यमय मैत्रेयजी ! भगवत्तत्त्वके उपदेशद्वारा जीवोंको जन्म-मृत्युसे छुड़ाकर उसे अभय कर देनेमें जो पुण्य होता है, समस्त वेदोंके अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादिसे होनेवाला पुण्य उस पुण्यके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता।

अर्थात् वैष्णव लोगोंके संसार प्रदण करनेका एकमात्र उद्देश्य है—विषय भोगोंमें फँसे हुए जीवोंका उद्धार करना। स्वयं विषय भोग करना अथवा धर्माधर्म अर्जन करना उसका उद्देश्य नहीं होता। संतों के भी स्त्री, पुत्र और कन्यादि अनेक आश्रित होते हैं। आश्रित वर्गका नित्य कल्याण-साधन तथा उनके जीवन यात्राका सुचारु रूपसे निर्वाह ही साधु संसारका यथार्थ उद्देश्य होता है। श्रीमद्भागवतमें साधु-संसारका उद्देश्य बतलाये हैं—

धर्मः स्वनुष्ठितः पूसां विष्वक्सेन-कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं भ्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।

नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो ज्ञाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥

कामस्य नेन्द्रिय-प्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।

जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १० ॥

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते ॥ ११ ॥

तच्छ्रद्धाणा मुनयो ज्ञान-वैराग्य-युक्तया ।

परयन्त्यात्मति चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥ १२ ॥

( श्रीमद्भा० १।२।८-१२ )

[ वर्णाश्रमरूप स्वधर्मका पालन करनेपर भी यदि मनुष्यके हृदयमें भगवान् और भागवतोंकी लीला-कथाओंके श्रवण और कीर्तनमें रुचि उत्पन्न न हो, तो वह निरा भ्रम-ही-भ्रम है ॥८॥ वैराग्य अथवा आत्मज्ञान तक नैऋत्यरूप धर्मका फल है—अपवर्ग।

उसकी सार्थकता त्रिवर्गरूप अर्थका प्राप्तिमें नहीं है। अर्थ केवल धर्मके लिए है, भोग-विलास उसका फल नहीं है ॥९॥ भोग-विलासका फल इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है। उसका प्रयोजन तो केवल जीवन-यात्राका निर्वाह करना है। जीवनका भी एक प्रयोजन है और वह प्रयोजन है—भगवत्तत्त्वकी जिज्ञासा। तत्त्व-जिज्ञासाके बिना जीवन वृथा है। नैमित्तिक धर्मका अनुष्ठान करके स्वर्गादि प्राप्त करना जीवनका उद्देश्य नहीं है ॥१०॥ तत्त्ववेत्ता लोग अद्वय-ज्ञान अर्थात् अद्वितीय वास्तव-वस्तुको पदार्थ कहते हैं। उसीको कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान् के नामसे पुकारते हैं ॥११॥ अप्राकृत वस्तुमें दृढ़ श्रद्धालु मुनिजन अर्थात् कीर्तनकारी भागवत आदि शास्त्रोंके श्रवण और कीर्तनसे सुकृति अर्जनकर सम्बन्ध ज्ञानसे युक्त तथा विषय भोग-त्यागसे रहित सेवाके द्वारा अपने शुद्ध हृदयमें उस परमात्मारूप तत्त्ववस्तुका दर्शन किया करते हैं ॥१२॥ ]

संसारमें रहते हुए लोभको दमन कर परोपकार व्रतके आचरण द्वारा भगवान्को प्रसन्न करना ही जीवोंका एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए।

**कर्मी, ज्ञानी और योगियोंके संसारसे वैष्णवों के संसारका भेद**

यदि कोई ऐसा कहे कि ऐसे कर्मोंमें फँसे रहनेसे क्रमशः मायजालमें आवद्ध होना पड़ता है, इसलिये श्रीमद्भागवतका कहना है—

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ।

भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधेन हरिसंश्रयम् ॥

( श्रीमद्भा० ३।२।२।३७ )

—व्यासनन्दन विदुरजी ! जो व्यक्ति श्रीहरिका एकान्त आश्रय प्रदण कर लेता है, उसे शारीरिक, मानसिक, दैविक, मानुषिक अथवा भौतिक शोत-उष्णादि दुःख कैसे कष्ट पहुँचा सकते हैं ?

कर्मी, ज्ञानी और तार्किक लोग यहाँ बहुत कुछ तर्क-वितर्क उठा सकते हैं। वे कह सकते हैं कि

संसारी लोग प्रवृत्तिमार्गका अनुसरण कर जिस संसारका पत्तन करते हैं उसका वैष्णव संसारसे आखिर भेद ही क्या है ? जब दोनोंके संसारोंमें धर्म, विद्या और अन्यान्य कर्म पूरे ऋमसे किये जाते हों, तब क्या कारण है कि केवल प्रवृत्तिमार्गीयोंके संसारकी ही निन्दा की जावे ? किन्तु थोड़ा विचार करनेसे प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्ति इस शंकाका अनायास ही समाधान कर सकता है। प्रवृत्तिमार्गीयोंका संसार आत्मसुखके लिए कल्पित होता है। इसलिये उसका फल बन्धनके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ? सन्तोंका संसार भीकृष्णकी प्रीतिके लिये होता है। अतः इनके संसारसे भव-बंधनकी कोई संभावना नहीं होती है।

**सत्संग ही निःसंग या निर्जनता है**

श्रीमद्भागवत सत्सङ्गकी परिभाषा निर्णय करते हुए कहते हैं—

संगो यः संसृतेहेतुरसत्सु विहितो धिया ।

स एव साधुषु कृतो निःसङ्गवाय कल्पते ॥

(श्रीमद्भा० ३।२।१२२)

अज्ञानवश असत्पुरुषोंके साथ किया हुआ जो सङ्ग संसार-बंधनका कारण होता है, वही सत्पुरुषोंके साथ किये जानेपर असङ्गता प्रदान करता है।

अर्थात् जो लोग असत्सङ्गमें व्यर्थ ही समय गँवाते हैं, वे पुनः-पुनः जन्म-मरण रूप संसार ही प्राप्त होते हैं किन्तु जो लोग सत्सङ्गमें वास करते हैं उनको निःसंगत्वकी प्राप्ति होती है—वे संसारसे छुटकारा पा लेते हैं।

**सन्तोंकी दया**

अब प्रश्न यह होता है कि असत् स्वभावके लोगोंके निकट जाना और उनके साथ कोई व्यवहार करना भी क्या वर्जनीय है ? यदि वर्जनीय है तब असत् लोगोंके उद्धारकी सम्भावना ही क्या बच रहती है ? इसका सिद्धान्त यह है कि जिस प्रकार विसूचिकाके रोगीकी चिकित्सा करनेके समय चिकित्सक रोगकी सांक्रामकता दूर करनेके लिये अपने साथ कपूर आदि सुगन्धित द्रव्योंको लेकर रोगीके

निकट जाता है और उसका उपचार करता है, उसी प्रकार साधुवैद्य भी हरिनामरूप महीपथि द्वारा सावधानीसे दुर्जन लोगोंका अमंगल दूर करते हैं।

**संग किसे कहते हैं और उसका उदाहरण**

‘सङ्ग’ शब्दका यथार्थ अर्थ निर्णय होने पर सारी शङ्काओंका अपने-आप समाधान हो जाता है। उदाहरणके लिये कोई व्यक्ति लम्पटताको अपने हृदयमें स्थान देकर किसी लम्पटके पास जाता है, तो उसमें उस लम्पट व्यक्तिके दोष अवश्य ही उत्पन्न हो जायेंगे। किन्तु यदि कोई व्यक्ति लम्पटताको एक महान् दोष जानकर किसी लम्पटका उससे उद्धार करनेके लिये उसके पास जाता है तब उस सङ्गको लम्पट-सङ्ग—असत् सङ्ग नहीं कहा जा सकता है। उल्टे उस लम्पट व्यक्तिका सत्सङ्ग हो जाता है। इसलिये निकटस्थ होनेको ही सङ्ग नहीं कहा जा सकता है। ‘सङ्ग’ शब्दका इसीप्रकार अर्थ स्वीकार कर संतलोग सर्वत्र विचरण करनेमें समर्थ होते हैं। अथच उनको सङ्गका दोष तनिक भी स्पर्श नहीं करता। साधुलोगोंका संसार भी इसी तरहका एक सङ्ग है। इसलिये वैराग्यके अतिरिक्त उसका कोई अन्य फल कैसे हो सकता है ?

**पाखंड-संसार और वैष्णव-संसार एक नहीं**

दुर्जन-संसार नितान्त हेय होता है। साथ-ही-साथ उनका जीवन भी मृत्युके समान होता है। उनके विषयमें श्रीमद्भागवतका कितना स्पष्ट विचार है—

नेह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।

न तीर्थ-पादसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥

(श्रीमद्भा० ३।२।१५६)

अर्थात् जिस पुरुषके कर्म धर्मके उद्देश्यसे न किये जाँय तथा जिनका धर्म वैराग्यके उद्देश्यसे न हो और जिनके वैराग्यमें कृष्ण-सेवा नहीं होती, वे जीवित रह कर भी मृतकके समान हैं। अतएव साधु लोगोंका संसार ही कृष्ण-सेवा है।

साधु-संसार और असाधु-संसारमें बहुत अन्तर होता है। परम महान् और अतीव लुद्रमें जो भेद होता है, धर्म और अधर्ममें जो तारतम्य है, तथा

अन्धकार और आलोकमें जो परस्पर विरोध भाव है, पाखण्ड-संसार और साधु-संसारमें भी उतना ही अंतर है।

इस पवित्र वैष्णव संसारमें अनेक पाखंडी लोग प्रवेश कर जाते हैं। इसीलिये वैष्णव संसारकी मर्यादा नष्ट नहीं हो सकती है। बहुतसे वनावटी पदार्थ धीके नाम से बाजारमें चलते हैं। इसलिये शुद्ध धीसे घृणा करना कोरी मूर्खताके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? जो स्वयं साधु हैं, वे पाखंडी लोगोंका विश्वास नहीं करते, बल्कि वे यथार्थ साधुका ही उपयुक्त सम्मान करते हैं। बहुतसे पाखंडी साधुका वाना लेकर लोगों को ठगते फिरते हैं, इसलिये सच्चे साधु तिरस्कारके पात्र नहीं हो सकते। कालनेमी और रावणआदि दुष्ट व्यक्तियोंने वैष्णव-वेश धारणकर कुकर्म किये थे, इसीलिये इनका दोष वैष्णवोंके माथे पर नहीं मढ़ा जा सकता है। बड़े खेदकी बात है, आज-कल बहुतसे लोग संतोको पाखण्डी समझ कर तिरस्कार करते हैं।

मिथिलाके ब्राह्मण समाजमें यह दोष अधिकरूपमें पाया जाता है। एक समय मिथिलाके एक अद्वैतवादी पण्डित मेरे पास आये। हम दोनों बात कर ही रहे थे कि एक अत्यन्त सुन्दर और बिनम्र वैष्णव भी वहाँ पधारे। गलेमें तुलसीकी माला और चौड़े ललाटपर तिलक उनके प्रशान्त मुख-मण्डलकी अपूर्व शोभा बढ़ा रहे थे। उस वैष्णवकी देखना था कि हमारे मैथिली ओम्हा पण्डित महाशय आग-बबूला हो उठे—‘हम जानता है राम कटका और वैल दागनेवाले सभी भण्ड होते हैं।’ अर्थात् राम-राम करनेवाले और तिलक छाप लेनेवाले पाखण्डो होते हैं। उनका ऐसा अभद्र व्यवहार देखकर मैंने ओम्हाजीसे बड़े ही नम्र शब्दोंमें निवेदन किया— ‘पण्डितजी। आप इन्हें देखते ही इतने नाराज क्यों हो गए? क्या आप इनको पहलेसे जानते हैं?’ पण्डितजी जरा भँवरते हुए बोले—‘नहीं, मैं इसे आजसे पहले कभी नहीं देखा है।’ मेरे सभ्य बन्धुओं! जरा विचार कीजिए, ओम्हाजीका विचार गलत था या नहीं? उस वैष्णवसे बातचीत होने पर मुझे पता चला कि वे उच्च कोटिके संत हैं।

उन्होंने ओम्हाजीके अभद्र व्यवहारपर तनिक भी ध्यान न दिया। किन्तु महात्माओंकी अवज्ञा करना एक अत्यन्त भोषण व्यापार है—इसे कौन नहीं जानता? वैष्णव वेश-भूषा देखकर किसीको पाखंडी मानना बड़े दुर्भाग्यकी बात है। ओम्हाजीकी तरह जिन लोगोंको सत्संगपर आस्था नहीं है वे अत्यन्त शोचनीय हैं। अतः वे आप लोगोंकी दयाके अधिकतर अधिकारी हैं।

भण्डताकी आशङ्का कर हम किसी नवागन्तुक व्यक्तिका कदापि तिरस्कार न करेंगे। वैष्णव वेश पाखंड है अथवा वैष्णव वेशधारी सभी पाखंडी होते हैं—बात ऐसी नहीं है। वेशधारियोंमें बहुतसे उच्चकोटिके महापुरुष भी होते हैं। अतएव जबतक पूरी जानकारी प्राप्त न कर ली जाय, तबतक उनका अनादर करना सर्वथा अनुचित है।

**असाधु व्यक्तियोंके प्रति कृपा करना—प्रेमका ही एक प्रकारका लक्षण है**

जब हम किसी व्यक्तिके विषयमें निश्चितरूपसे जान लेते हैं कि वह व्यक्ति वास्तवमें भण्ड या असाधु है, तब हमारा यह कर्त्तव्य होता है कि हम उस पर कृपा करें, जिससे वह अपनी भण्डताका परित्याग कर सके, सरल और निष्कपट होनेका प्रयत्न कर सके। ऐसे लोगोंके प्रति क्रोध या द्वेष कैसे किया जा सकता है? निखिल जीवोंके प्रति प्रेम करना हमारा नित्यधर्म है, क्योंकि जीवमात्रका कृष्णसे सम्बन्ध है। यह प्रेम जीवोंमें दो तरहसे प्रकाश पाता है—(१) संतोंके प्रति भ्रातृस्नेहके रूपमें और (२) असंतों के प्रति कृपाके रूपमें।

**गृहस्थ वैष्णवोंका कर्त्तव्य**

अतएव हमारा इस अपूर्व वैष्णव संसारके प्रति द्वेष और हिंसा दूर हो। प्रेम हमारी समस्त क्रियाओंका उद्दीपक हो। स्वार्थरताका समूल नाश हो। चिदानन्द, जो जीवोंका स्वाभाविक आकार है—हममें प्रकाशित हो। और कृष्ण भक्तिका—जो जीवका स्वभाव है—हमारा एकमात्र कार्य हो। संतों! परमेश्वरका यह आदेश श्रवण करो—

कृत्वा दयाम्ब जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ।  
मय्यात्मानं सहजगत् द्रव्यस्यात्मनि चापि माम् ॥

( श्रीमद्भा० ३।२१।३१ )

—बत्स ! गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर तुम पहले जीवों पर दया करो, पीछे संन्यास-आश्रम प्रदण कर प्राणि-मात्रको अभय दान दो । ऐसा करनेसे तुम अपने साथ सम्पूर्ण जगत्को मुझमें ( भगवान्में ) और मुझको अपनेमें (अन्तर्यामीके रूपमें) स्थित देखोगे ।

समस्त जीवोंके प्रति दया करो और उन सबको अभयदान करते हुए अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को भगवान्में और भगवान्को अपनेमें स्थित जान कर नित्य-धर्मका पालन करो ।

### गृहस्थोंके प्रति महाप्रभुकी शिक्षा

कर्मणावरुणालय भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेवने गृहस्थ भक्तोंको लक्ष्य करके अपने प्रिय भक्त श्रीरामानन्द रायको वैष्णव धर्मका उपदेश दिया था—

‘आरो स्वल्पे बलि तवे वैराग्य लक्षण ।  
मनोयोगी ह्ये राय करह श्रवण ॥  
सकर्म प्रेमेर सह स्रष्टार साधन ।  
स्वार्थहीन भ्रातृभाव जगते स्थापन ॥  
युक्तिसिद्ध विश्वास से अमूल्य रतन ।  
यत्न करि धरे हृदे भक्त-महाजन ॥  
सेई त विश्वास आमारे शिष्याय ।  
आमि ईश्वरेते आर ईश्वर आमाय ॥’

(चैतन्यचरितामृत)

भावार्थ यह है कि अपने-अपने वर्णधर्म और आश्रमधर्मका प्रीतिपूर्वक सावधानीसे पालन करते हुए निष्कामभावसे निखिल प्राणियोंके प्रति भ्रातृभाव रखना चाहिये । सृष्टिकर्ता परमेश्वरको प्रसन्न करनेका यह आत्यन्त सुगम साधन है । कृष्णभक्तिका आचरण करनेसे समस्त कर्मोंका करना अपने-आप हो जाता है—शास्त्रीय भ्रद्दामूलक यह विश्वास एक अमूल्य रत्न है । भक्तजन इस अमूल्य-निधिको हृदय-गुहामे खूब यत्नपूर्वक छिपाकर रखते हैं । शास्त्रीय

भ्रद्दामूलक यह विश्वास जिस भक्तके हृदयमें दृढ़ हो जाता है वे अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को ईश्वरमें और ईश्वरको अपनेमें स्थित देखते हैं ।

समस्त जीवोंके प्रति भ्रातृभाव और परमेश्वरको आत्मनिवेदन तक जो हमारा नित्यधर्म है, उसका हमें दृढ़तासे पालन करना चाहिये । इससे बढ़कर और उत्कृष्ट क्या हो सकता है ? जगत् गुरु श्रीचैतन्यदेवने स्वयं इसका आचरण कर जगत्को उपदेश दिया है ।

### महाप्रभुकी अभयवाणी और जीवोंके प्रति दयाकी शिक्षा

वे हमारे साथ रहकर निरन्तर हमें ढाढ़स देते हुए कहते हैं—‘डरो नहीं, अपना-अपना काम करते चलो । मैं सब समय तुम लोगोंके साथ रहकर शक्ति संचार कर रहा हूँ । माया-मोह दूर करनेके लिये मैंने तुम्हारे हाथोंमें हरिनामरूप मुद्गर दे रखा है, उसीके सहारे पापिष्ठ कलिका दमन करो । दुर्बल और पाखंडी जीवोंके प्रति कृपा वितरण करते हुए विभिन्न स्थानोंमें निभंय होकर विचरण करो । उन लोगोंकी किसी प्रकार अबहेला न करो । जिस प्रकार जगाई और मधाई द्वारा मार खाने पर भी मैंने उनका उद्धार किया है, उसी प्रकार पाखण्डी लोगोंके कुवचनों और दुर्व्यवहारोंको सहते हुए उनके कल्याणमें रत रहो । अपनेको दुर्बल मानकर डरो नहीं । क्योंकि तुम लोगोंने मेरा आश्रय प्रदण कर हरिनाम प्राप्त किया है ।

कि दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसां ।

यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो न्यासनाख्ययः ॥

( श्रीमद्भा० ३।२३।४२ )

—हे विदुरजी ! महर्षि कर्दमजीके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । जिन्होंने भगवान्के भव-भयहारी पवित्र पादपद्मोंका आश्रय लिया है, उन धीर पुरुषोंके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।

परिश्रम करते चलो, मैं सबप्रकारसे तुम्हारी मदद करूँगा ।’

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

# मायावादकी जीवनी

[ पूर्व-प्रकाशित वर्ष २, संख्या २, पृष्ठ ३१२ से आगे ]

उपसंहारमें अधिक बातें लिखकर मैं पाठकोंको तङ्ग नहीं करना चाहता । मैंने प्रत्येक खण्ड विषयोंके अन्तमें थोड़े-बहुत शब्दोंमें अपना मन्तव्य वक्त किया है । मेरे इस लुद्र निबन्धकी आद्योपान्त आलोचना कर पाठकवर्ग इस बातको भलीभाँति जान पायेंगे कि आजतक किसी भी वैष्णव धर्मावलम्बी महापुरुषने किसी भी मायावादीके समक्ष वाद-विवादमें परास्त होकर, शुद्ध भक्तिकी सर्वश्रेष्ठता अस्वीकार कर मायावादके नीरस ज्ञान-पथको ग्रहण नहीं किया है । किन्तु मायावादियोंमें सर्वश्रेष्ठ अनेक प्रतिभाशाली विद्वान् व्यक्तियोंने शुद्धवैष्णवोंके साथ शास्त्रार्थमें परास्त होकर विष्णुका केवल परतमत्व ही स्वीकार नहीं किया है, अपितु ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिकी उत्कर्षता अङ्गीकार कर तथा अपना मत परित्याग कर वे भक्ति धर्ममें दीक्षित भी हुए हैं । यदि आपलोग शङ्करका दिग्विजय प्रसङ्ग आलोचना करें तो स्पष्टरूपसे देख पायेंगे कि आचार्य शङ्करने जिन लोगोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया था उनमें मण्डन मिश्र ही सर्वप्रधान थे । वे जैमिनीमतके अनुयायी कर्मवादी और स्मार्त थे । आचार्य शङ्कर द्वारा पराजित दूसरे-दूसरे व्यक्तियोंके सम्बन्धमें, 'शङ्कर विजय' प्रसङ्गमें मैंने थोड़ी बहुत आलोचना की है । आचार्य शङ्करके अनन्तर आजतक मायावादके इतिहासमें केवल नृसिंह आश्रम नामक मायावादी आचार्यने अप्यय दीक्षित नामक एक शैव पण्डितको शास्त्रार्थमें पराजित कर उनको ज्ञानवादमें दीक्षित किया है । आचार्य अप्यय दीक्षितके ग्रन्थोंसे पता चलता है कि उनके हृदयमें पहलेसे ही पञ्चापासनाके प्रति आदर था । आचार्य शङ्करने अज्ञ जीवोंके लिये पञ्चोपासनाके ऊपर विशेष जोर दिया था । भाष्कराचार्यकी विचार-धाराके अनुसार अप्यय दीक्षित एक सच्चे शैव भी प्रतीत नहीं होते ।

जैसा भी हो, ये वैष्णव नहीं थे—इस विषयमें कोई भी मतद्वैत नहीं है । ऐसी अवस्थामें अवैष्णव अप्यय दीक्षितके द्वारा किसी भी वैष्णवेतर मत अर्थात् ज्ञानवादको स्वीकार करनेसे न तो वैष्णवमत की कुछ मर्यादा ही घटती है और न उससे ज्ञानवादकी प्रधानता ही सूचित होती है ।

सत्ययुगके चारों कुमारोंसे लेकर आचार्य शङ्करके आविर्भाव काल तक मायावादके ५००० वर्षोंके इतिहासमें मायावादियोंके जन्म ग्रहणका ढङ्ग लक्ष्य करनेका एक प्रधान विषय है । "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"—मंत्रद्वारा हमारी उत्पत्तिका स्थान (ब्रह्म) निरूपण किया गया है । किन्तु प्रधान-प्रधान अद्वैतवादियोंकी उत्पत्ति एक निराले और अस्वाभाविक ढङ्गसे हुई है । जिससे ऐसा टपकता है कि उन्होंने इसी कारण शक्ति और शक्तिमानका विचार परित्याग कर दिया है और माता-पिताके भावको मूलतः उखाड़ फेंक कर निर्विशेष ब्रह्मत्वकी संस्थापना की है ।

यद्यपि यहाँ यह निरूपण किये जानेकी आवश्यकता है कि वैष्णव आचार्योंकी युक्तियोंने मायावादकी युक्तियोंका किस तरह निराकरण किया है, किन्तु इस लुद्र निबन्धमें स्थानाभावके कारण संभव नहीं हो सका है । इस विषयमें हम श्रीजीव गोस्वामीके पट्-सन्दर्भ और सर्व-सम्वादिनी; श्रीवलदेव विद्याभूषण प्रभुके गोविन्द भाष्य, सिद्धान्तरत्न, प्रमेयरत्नावली, विष्णु-सहस्रनाम भाष्य तथा उपनिषद् भाष्य और गौड़ीय वैष्णवाचार्य यतिसम्राट परमहंस स्वामी श्रीमद्-भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजके चैतन्य-चरितामृतका अनुभाष्य और श्रीमद्भागवतका गौड़ीय भाष्य आलोचना करनेके लिये अनुरोध करूँगा ।

### ऐतिह्यद्वारा फलनिरोध

हमने पहले ही यह दर्शाया है कि मायावादके आचोपान्त इतिहास और तत्त्वसमूहकी समालोचना सबर्था ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधार पर ही की गई है। मायावादकी भित्ति अत्यन्त दुबला युक्तियोंके आधार पर टिकी है और यही कारण है कि सत्ययुगसे लेकर आजतक वह अपने प्रतिपक्षियोंके समक्ष बाग्युद्धमें अपनी पराजय स्वीकार करता आया है। फिर भी प्राचीनकालमें भी इस मतवादका अस्तित्व लक्ष्य कर कोई इसका पदाङ्क अनुसरण कर निर्वाण प्राप्त करना चाहे तो हमारा वक्तव्य है कि मायावादकी निर्वाण मुक्ति सम्पूर्ण मिथ्या और कल्पनामूलक शब्दमात्र है—इसे केवल ऐतिह्य प्रमाणोंके आधार पर ही निःसन्देह रूपमें प्रमाणित किया जा सकता है। वास्तवमें निर्वाण नामक ऐसी कोई अवस्था ही नहीं है, जिसे जोब कभी भी प्राप्त कर सके। अद्वैतवादियोंमें से आजतक कोई भी उस अवस्थाको प्राप्त हुआ हो—इसका एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता है। गौड़पाद, गोविन्दपाद, आचार्य शङ्कर और माधव जैसे प्रकांड २ मायावादियोंकी जीवनी आलोचना करनेसे हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि इनमेंसे कोई भी उनकी समर्थित निर्वाण मुक्ति प्राप्त नहीं कर सके थे। आचार्य शङ्करके जीवनचरित्रके अनुसार एक दिन आचार्य शङ्कर ध्यानमें मग्न थे। उसी समय उनके दादागुरु श्रीगौड़पाद उनके निकट आकर बोले—‘शङ्कर ! मैंने तुम्हारे गुरुदेव आचार्य गोविन्दपादके निकट तुम्हारी खूब प्रशंसा सुनी है। मैंने यह भी सुना है कि तुमने मेरी माङ्क्य कारिकाके ऊपर एक सुन्दर भाष्यकी रचना की है। मैं उसे देखना चाहता हूँ।’ आचार्य शङ्करने तत्क्षण उक्तकारिका पर अपना लिखा हुआ भाष्य उनको दिखलाया। गौड़पाद उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उसका अनुमोदन कर चले गये।

उपर्युक्त घटनासे यह पता चलता है कि गौड़पाद और गोविन्दपादकी विद्वेह मुक्तिके बाद निर्वाण मुक्ति नहीं हुई थी। यदि उनकी निर्वाण मुक्ति हुई

होती तो गौड़पाद निर्वाण मुक्ति प्राप्त होने पर भी निर्वाण प्राप्त गोविन्दपादके मुखसे शङ्कर सम्बन्धी बातोंको कैसे सुन सकते थे ? दूसरी बात, आचार्य शङ्कर भी माङ्क्य कारिका पर अपना लिखा हुआ भाष्य निर्वाण प्राप्त हुए गौड़पादको कैसे दिखला सके थे ? ये दोनों बातें सर्वतोभावेन असंभव हैं। यदि हम उक्त घटनाको सत्य मानते हैं तो मायावादियोंकी निर्वाण मुक्ति या निर्विशेष मुक्ति मिथ्या जान पड़ती है, दूसरी तरफ यदि हम उनकी निर्वाण मुक्ति या निर्विशेष मुक्तिको सत्य मानते हैं तब उक्त घटना मिथ्या या काल्पनिक प्रतीत होती है। मायावादियोंने निर्वाण मुक्तिका जो लक्षण बतलाया है उस पर विचार करनेसे उक्त घटनाका कुछ अंश सत्य मान लेने पर भी उक्त दोनों मायावादी आचार्योंकी निर्वाण मुक्ति अलीक ही प्रतीत होती है। उनलोगोंकी बातें छोड़िये, शङ्करकी जीवनीके अनुसार स्वयं शङ्कर भी पुनः माधवाचार्य अर्थात् विद्यारण्यके रूपमें आविर्भूत हुए थे। क्या निर्वाण मुक्तिकी यही परिणति है ? मायावादियोंका कथन है कि निर्वाण मुक्तिके अनन्तर जीवकी ब्रह्मके अतिरिक्त पृथक् कोई सत्ता नहीं रहती और वह ब्रह्म भी निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय व निर्विशेष आदि होता है। ऐसी अवस्थामें जब गौड़पाद, गोविन्दपाद और शङ्कराचार्यकी पृथक्पृथक् रूपमें सत्ता देखी जाती है तो किस युक्तिके आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि इनलोगोंकी निर्वाण मुक्ति हुई थी ? मायावादी आचार्योंका निर्वाण मुक्तिके सम्बन्धमें आजतक कोई भी ऐसा सिद्धान्त नहीं उपलब्ध होता, जिससे निर्वाणके पश्चात् भी परस्पर वार्त्तालाप और पुनराविर्भाव संभव माना जा सके। इससे स्पष्ट है कि निर्वाण मुक्ति एक मिथ्या और छलनामूलक शब्द मात्र है अथवा लोकसंप्रद करकेका फंदा मात्र है, क्योंकि निर्वाण मुक्तिके प्रधान-प्रधान प्रचारक—यहाँ तक कि जिनको इस मतका प्रवर्तक कहनेमें भी अत्युक्ति न होगी, इस प्रकारकी कोई मुक्ति प्राप्त नहीं कर सके हैं। फिर दूसरोंकी बात क्या कहना ?

महान् आश्चर्यकी बात यह है कि शङ्कराचार्यने स्वप्नतत्त्वको मिथ्या बतलाकर जगत्को सर्वथा मिथ्या प्रतिपादित किया है । किन्तु शङ्करके अनुयायोंने—जिन्होंने आचार्य शङ्करका जीवनचरित लिखा है—स्वप्नतत्त्वको सत्य माना है । प्रमाण स्वरूप हम कहना चाहते हैं कि—जब शङ्करकी माता कलंकिनी होने पर लोक-लज्जाके डरसे आत्महत्या करने जा रही थी, उनके पिता मधमण्डनको स्वप्नमें आज्ञा मिली कि विशिष्टाके गर्भमें शङ्कर अवस्थान कर रहे हैं: इसलिये वे विशिष्टाकी रक्षा करें जिससे वे आत्महत्या न कर सकें । कुछ ही दिनोंमें स्वप्न सत्य हुआ—विशिष्टाके गर्भसे शङ्करका आविर्भाव हुआ । अब पाठक स्वयं विचार करें कि इस घटनासे क्या स्वप्न मिथ्या प्रमाणित होता है ? क्या विशिष्टाके गर्भसे शङ्कर नामक किसीका जन्म नहीं हुआ ? क्या ये सभी बातें 'स्वप्नोपम' या 'मायोपम' मिथ्या ही हैं ? इस सत्य ऐतिहासिक घटनाओंके विद्यमान रहते हुए भी क्या मायावादके 'स्वप्न' के दृष्टान्तके अनुसार जगत्को मिथ्या कहा जा सकता है ?

पाठकोंको एक और आपत्ति हो सकती है कि 'शङ्कर' प्रच्छन्न बौद्ध होनेपर भी शून्य और ब्रह्म एक नहीं हैं । इसका उत्तर यह है कि शङ्करके ब्रह्म—शून्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं । बल्कि शास्त्रीय ब्रह्म ही ब्रह्म हैं अर्थात्—पूर्ण और अवयवयुक्त हैं । वे स्वरूपतः और गुणतः असीम और वृहत्तम् वस्तु हैं । 'वेदान्त सूत्र' में व्यासदेवने 'ब्रह्म' के सम्बन्धमें घोषणा की है कि 'ब्रह्म' उस परतत्त्वको कहते हैं जिससे जगत्का जन्म आदि साधित होता है—'जन्माद्यस्य यतः'—(वेदान्त सूत्र १।१।२) । आचार्य रामानुज भी कहते हैं—'सर्ववृहत्त्वगुणयोगेन..... मुक्तवृतः (श्रीभाष्य १।१।१) । अतः परमेश्वर ही शास्त्र-संगत और वैष्णवोंके आदृत ब्रह्म हैं और ये ब्रह्म शङ्करके ब्रह्मसे सम्पूर्ण पृथक् है—

वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं  
चैतन्यात्मानं विश्वयोनिं महान्तम् ।  
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति  
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

—ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

## असत्संगके दोष

असत्संगसे बचना चाहिए । इनका संग करनेसे श्रेय वस्तुका साधन किसी प्रकार भी संभव नहीं है । जो असत्संगमें रहते हैं, वे सहस्रों प्रकारके साधन करके भी कोई फल लाभ नहीं कर सकते । आजकल अधिकांश लोग साधु-संन्यासियोंका बाना पहनकर साधनके अंगोंका पालन करते हैं, किन्तु कुछ दिनोंके बाद विचार करने पर देखा जाता है कि वे कुछ भी उन्नति नहीं कर सके हैं । इसका मूलकारण असत्संग है । असत्संग दो प्रकारका होता है—एक स्त्रीसंग अथवा स्त्रोसंगियोंका संग, और दूसरा कृष्णभक्तिसे रहित व्यक्तियोंका संग । इन दोनों प्रकारके असत्संगोंसे ही दूर रहना चाहिए । प्रत्येक हरिवासर (एकादशी) के दिन एकवार विचार करना कर्त्तव्य है कि पिछले दिनोंमें हमारा भजन कितना उन्नत हुआ है । यदि देखा जाय कि तनिक भी उन्नति नहीं हुई है अथवा उन्नतिके बदले अवनति हुई है, तो समझना चाहिए कि असत्संग ही इसका प्रधान कारण है और उसे तत्क्षण परित्याग करनेका यत्न करना चाहिए ।

—श्रीभक्तिविनोद ठाकुर

# गीताकी वाणी

## छठा अध्याय

अष्टांग योगसे युक्त कर्मयोगका उपदेश करनेकी इच्छासे श्रीभगवान् इस अध्यायमें पहले कर्मयोगकी प्रशंसा करते हैं। जो पुरुष कर्मफलकी कामनासे रहित होकर कर्त्तव्यकर्मका आचरण करता है, वह ज्ञानयोगनिष्ठ संन्यासी है और वही अष्टांगयोगनिष्ठ योगी है। वेदोंमें पुत्र, धन और स्वर्गादिकी अभिलाषा त्यागनेको ही संन्यास कहा गया है। अतएव कर्मफलकी कामना और कर्त्तव्याभिमान परित्याग कर विहित कर्मोंके आचरणका नाम ही कर्मयोग तथा संन्यास है। ज्ञानयोगारूढ़ होनेवाले पुरुषों के लिये कर्मयोग और योगारूढ़ व्यक्तियों के लिए कर्म-संन्यास ही उत्तम साधन हैं। जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयोंमें आसक्त नहीं होती वह सर्वसंकल्पका त्याग करनेवाला योगारूढ़ कहलाता है।

जो लोग संसारमें आसक्त हैं, उन्हें विवेकयुक्त मनके द्वारा आत्मोद्धारकी चेष्टा करनी चाहिए। विवेक रहित मन आत्माका शत्रु है, और विवेकयुक्त मन आत्माका मित्र है। मनको वशमें करनेवाला व्यक्ति शीत-प्रीष्म, सुख-दुःख तथा मान-अपमानमें विचलित नहीं होता। वह शास्त्रज्ञान और यथार्थ अनुभूतिके द्वारा कामनारहित और जितेन्द्रिय होकर योगारूढ़ हो जाता है। ऐसी अवस्थामें उसका सम्पूर्ण वस्तुओंमें समज्ञान हो जाता है।

अब प्रश्न यह होता है कि इसप्रकार योगारूढ़ कैसे हुआ जाय? भगवान् इसका उत्तर देते हैं—साधक किसी निर्जन स्थानमें अकेले अन्तःकरणको वशमें करके तथा आशारहित और संग्रहशून्य होकर पवित्र भूमिपर कुशा बिछावे। उसके ऊपर क्रमशः मृगछाला और नरम वस्त्र बिछावे। आसन न तो

बहुत ऊँचा होना चाहिये और न बहुत नीचा ही। उस आसन पर बैठकर चंचल चित्तको एकाम करनेके लिए—अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए योगका अभ्यास करे। योगाभ्यासका नियम यह है कि शरीर, सिर और गलेको समान तथा अचल रखकर अन्य दिशाओंको न देखता हुआ अपनी नासिकाके अग्रभाग पर दृष्टि जमावे और भयरहित तथा ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित होकर भगवान्का ध्यान करे। इस प्रकार मनको बशीभूत करनेवाला योगी मोक्ष पदको प्राप्त करता है। योगी पुरुषके अहार-विहारके सम्बन्धमें भी नियम हैं—उसे परिमित रूपमें अहार और शयन आदि करना चाहिए। क्योंकि ठूँस-ठूँस कर खानेसे नींद और आलस्य बढ़ जाते हैं, साथ ही पचने की शक्तिसे अधिक खानेसे भौँति भौँतिके रोग उत्पन्न होते हैं। दूसरी ओर परिमितसे कम अहार करनेसे भी शारीरिक दुर्बलता बढ़ जाती है, जिससे चित्तको स्थिर होनेमें बाधा पड़ती है। इसी प्रकार उसे न तो बहुत अधिक सोना ही चाहिए और न बहुत अधिक जगना ही चाहिए तथा न तो उसे अधिक परिश्रम ही करना चाहिए और न परिश्रमका सर्वथा त्याग ही करना चाहिए। यदि ऐसा न किया जाय तो योग सिद्ध नहीं हो सकता। सब दुखोंका नाश करनेवाला यह योग तो परिमितरूपमें आहार-विहार करनेवाले, श्रम करने वाले, तथा सोने-जागनेवाले का ही सिद्ध हो सकता है। योगयुक्त अवस्था तभी प्राप्त हो सकती है जब कि चित्त समस्त प्रकारकी कामनाओंसे रहित होकर आत्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाता है। योगारूढ़ व्यक्तिके चित्तकी उपमा वायुरहित स्थानमें रखे हुए

दीपक की उस शिखासे दी गयी है जो बिना किसी कम्पनके स्थिर भावसे प्रकाशमान रहती है। जिस अवस्थामें योगी शरीर आदिका दर्शन न कर केवल आत्मदर्शनमें विभोर रहता है तथा विषय सुखोंको तुच्छ जानकर आत्म-सुखमें ही सुखी रहता है उस दुःखसंयोग-रहित अवस्थाका नाम 'योग' है।

इस अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए साधक संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको निःशेषरूपसे परित्याग कर और मनके द्वारा इन्द्रिय-समूहको सभी ओरसे भलीभाँति रोककर तथा चित्त विक्षिप्त होनेका हेतु उपस्थित होने पर भी ज्ञान और वैराग्यके सहारे चंचल मनको निरोध कर ब्रह्ममें स्थापन करे। सांसारिक समस्त वस्तुओंको अविद्यासे उत्पन्न क्षणस्थायी और दुःखका कारण समझ लेने पर उन विषयोंसे चित्तको उपरत करना अत्यन्त सहज हो जाता है। इस प्रकार एकाग्रचित्त-वाला व्यक्ति रजोगुणसे रहित, प्रशान्त चित्त और धर्माधर्मरहित होकर—ब्रह्म भावको प्राप्त होकर परमानन्दका अधिकारी होता है। वह पाप-रहित समाधि सिद्ध योगी परमात्माको समस्त प्राणियोंका अन्तर्यामी और आश्रय-स्वरूप दर्शन करता है। जो सब प्राणियोंमें परमात्माका और परमात्मामें सब प्राणियोंका दर्शन करता है, उसे कभी भी भगवद्दर्शन से वंचित नहीं होना पड़ता। समस्त प्राणियोंमें स्थित सच्चिदानन्दघन वासुदेवका दर्शन होनेपर योगी पुरुषका चित्त कहीं भी रहे, भगवान्से विचलित नहीं होता। ऐसे भगवत्परायण योगियोंमें जो सर्वत्र सम दृष्टिसम्पन्न होता है, वही श्रेष्ठ योगी है

भगवान्के समता सम्बन्धी उपदेशोंको सुनकर अर्जुन मनकी चंचलताके कारण उसमें अपनी अचल स्थिति होना कठिन समझकर भगवान्से जिज्ञासा करते हैं—मधुसूदन ! सब समयोंमें तथा सब क्षेत्रोंमें सम-दर्शनरूप योगका स्थापन करना चंचल चित्तके लिए असम्भव सा प्रतीत होता है, क्योंकि यह मन बड़ा ही चंचल, एक विषयसे दूसरे विषयोंमें भटकनेवाला और बलवान है। इसे बशमें

करना वायुको रोकनेके समान अत्यन्त दुष्कर समझता हूँ। अर्जुनकी चित्त सुनकर भगवान् कहते हैं कि— निःसन्देह मन बड़ा ही चंचल है, फिर भी वह अभ्यास और वैराग्यसे बशमें किया जा सकता है। जिसका चित्त बशमें नहीं है, उनके लिए यह कार्य कठिन होने पर भी गुरुके उपदेशोंका अवलम्बन कर चित्तको बशीभूत करनेवाले पुरुषोंके लिए सहज होता है।

इस पर अर्जुन फिर प्रश्न करते हैं—यदि कोई साधक योगमें प्रवृत्त होता है, किन्तु संयमके अभाव में उसका चित्त अंतकालमें योगसे विचलित हो जाय तो ऐसे साधककी क्या गति होती है ? उसकी तो पहले ही इस लोकके सुखोंके प्रति विरति हो गयी होती है, फिर योगकी सिद्धि न होने से क्या उसको अन्य लोकमें गमन रूप सद्गतिने भी वंचित हो जाना पड़ता है ? भगवान् इसका उत्तर देते हैं—योगभ्रष्ट पुरुषका न तो इस लोकमें ही नाश होता है और न परलोकमें ही। क्योंकि योगका आचरण करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। इनमें जो भोगवासनाओंको सम्पूर्णरूपसे त्याग करनेके पहले ही योगसे भ्रष्ट हो जाते हैं, वे पृथ्वीवालों के पाने योग्य उत्तम-उत्तम भोगोंको स्वर्गमें बहुत दिनों तक भोगकर सदाचारी धार्मिक पुरुषोंके घर जन्म ग्रहण करते हैं और परिपक्व योगी चित्त विचलित होनेके कारण योग से भ्रष्ट होने पर योगमें पक्के और बुद्धिमान योगियों के घर जन्म लेते हैं। वहाँ उस जन्ममें उन योगियोंसे उपदेश प्राप्त होकर वे अपने पूर्व जन्मके शरीरसे संप्रह की हुई योगकी बुद्धिको अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं तथा संसिद्धि प्राप्तके लिए पहलेसे भी बढ़कर प्रयत्न करते हैं। पूर्व-शरीर द्वारा अर्जित संस्कारके प्रभावसे वे शीघ्र ही भोगसे निवृत्त होकर योग तत्त्वज्ञानकी अभिलाषा से वैदिक कर्मों द्वारा पाये जानेवाले फलोंसे बढ़कर उत्तम फल लाभ करते हैं और यत्पूर्वक योगका अनुष्ठान करते हुए वे अनेक जन्मोंमें उत्तम गति प्राप्त कर लेते हैं।

इसलिए तपस्वी, ज्ञानी और कर्मियोंसे योगी ही श्रेष्ठ हैं और समस्त योगियोंमें भी भगवान्‌के चरणारविन्दमें श्रद्धालु, भगवद्गत-चित्त भक्त-योगी ही

सर्वश्रेष्ठ योगी हैं। इसलिये ऐसे भक्तयोगी होनेका उपदेश ही प्रथम छः अध्यायोंका सार मर्म है।

## सातवां अध्याय

पूर्व अध्यायके उपसंहारमें भगवान् श्रीकृष्णने सम्पूर्ण भोगियोंमें भी उन श्रद्धालु योगियोंको, जो श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें चित्तवृत्तिको स्थापन कर अन्तरात्मासे उनका ही निरन्तर भजन करते हैं, सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। प्रस्तुत अध्यायमें भगवान्‌के ऐश्वर्यका और भक्त तथा अभक्तोंका विषय वर्णन किया जा रहा है। जब कृष्णोत्तर विषयोंसे विरक्त होकर भगवान्‌के प्रति अनुरक्ति प्रकाशित होती है, तब भक्तियोगका अवलम्बन कर निःसंशय रूपमें भगवान्‌को किस तरह पाया जा सकता है—इसका अत्यन्त सुन्दर विवेचन इस अध्यायमें किया गया है। परमेश्वर विषयक इस ज्ञानको 'अनुभवयुक्त विज्ञान' कहते हैं। इस ज्ञानका अधिकारी होनेपर इस संसारमें कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। इसलिये पूर्वोक्त छः अध्यायोंमें जिन विषयोंका वर्णन किया गया है, उन्हें यत्सम्पूर्ण एवं संशययुक्त समझना चाहिये। इसका कारण यह है कि भोजनकी सामग्री च्लु आदि इन्द्रियोंके गोचरीभूत होने पर भी जिम प्रकार भोजनके द्वारा ही उसका सम्यक् ज्ञान होता है उसी प्रकार भगवत्तत्त्वका सम्यक् ज्ञान एकमात्र भक्ति द्वारा ही संभव होता है। इस विषयमें कर्म और ज्ञान आदि सहायक नहीं होते।

हजारों मनुष्योंमें कोई एक ही सिद्धिके लिये यत्न करता है तथा ऐसे-ऐसे हजारों साधकोंमें कोई विरला ही भगवान्‌को तत्त्वसे जान पाता है। उपयुक्त उपदेश और यथायोग्य साधनके अभावमें अधिकांश मनुष्य ही भगवत्तत्त्वसे वंचित रह जाते हैं।

शक्तिमान् सम्बन्धी ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये शक्ति-तत्त्वका ज्ञान होना अनिवार्य है। इसलिये भगवान् यहाँ स्वयं अपनी परा और अपरा शक्तियों-

का परिचय देते हैं—'मेरी प्रकृति दो प्रकार की है। एक परा और दूसरी अपरा। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—यह आठ प्रकारसे विभाजित मेरी प्रकृति का नाम 'अपरा प्रकृति' है तथा जगत्‌को धारण करनेवाली जीवरूपा मेरी प्रकृतिको 'परा प्रकृति' कहते हैं। सम्पूर्ण भूत मेरी इन्हीं दोनों प्रकृतियोंसे उत्पन्न होते हैं। मैं ही सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका मूल कारण हूँ। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें मणियोंके समान मुझमें ही पिरोया हुआ है। मैं ही जलोंमें रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्यमें प्रभा हूँ, सब वेदोंमें ओंकार हूँ, आकाशमें शब्द हूँ तथा पुरुषोंमें पुरुषत्व हूँ। मैं ही पृथ्वीमें पवित्र गन्ध, अग्निमें तेज, प्राणियोंमें जीवनी शक्ति, तपस्वियोंमें तप तथा समस्त प्राणियोंमें सनातन बीज हूँ। मैं ही बुद्धिमानोंमें बुद्धि, तेजस्वियोंमें तेज, बलवानोंमें कामरागसे सर्वथा रहित बल और प्राणियोंमें धर्मके अनुकूल काम हूँ। इनके अतिरिक्त सात्त्विक, राजसिक और तामसिक आदि जितने भी भाव हैं, सब मुझसे ही उत्पन्न होते हैं तथा मुझमें ही स्थित हैं। परन्तु वास्तवमें न तो मैं ही उनमें स्थित हूँ न वे विविध प्रकारके भाव ही मुझमें स्थित हैं।'

भगवान् मायाधीन नहीं है प्रत्युत् मायाधीश है। समस्त प्राणियोंमें अथवा पदार्थोंमें उनकी सत्ता वर्तमान रहने पर भी बद्ध जीव इस त्रिगुणात्मिका माया द्वारा आच्छादित रहनेके कारण मायातीत परमात्माको जान नहीं पाता है। उनकी यह माया त्रिगुण मयी, अलौकिक शक्ति-सम्पन्न और कठिनतासे पार पायी जाने वाली है। जो एक मात्र भगवान्‌की शरण ग्रहण करते हैं वे इस मायासे तर जाते हैं। भगवान्‌के चरणोंमें आश्रय ले लेने पर मायासे सर्वथा छुटकारा

मिल जाना है। ऐसी दशामें प्रश्न होता है कि माया-बद्ध जीव भगवान्की शरण क्यों नहीं प्रदण करता है? इसका कारण यह है कि—मायाबद्ध जीवोंको— जो भगवान्का भजन नहीं करते, चार श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है—(१) पापकर्मपरायण मूढ़, (२) नराधम, (३) मायाद्वारा हरे गए ज्ञानवाले और (४) आसुरिक भावोंसे युक्त मनुष्य। इनमें जो मेरे स्वरूपको न जाननेके कारण प्राकृत विषयोंमें ही आसक्त रहते हैं तथा पशुके समान जीवन बिताते हैं, उन्हें मूढ़ कहते हैं। कुलिनताके गौरव तथा जड़ विद्याके अभिमानसे जो जीव भगवान्की ओरसे विमुख रहते हैं, वे नराधम कहलाते हैं। निरीश्वर सांख्यवादी मायाद्वारा हरे गये ज्ञानवाले हैं। वे परमेश्वरके सर्वश्रेष्ठ भावको समझनेमें असमर्थ होकर मायाको ही कर्त्ता-घर्त्ता और संहर्त्ता बतलाते हैं। और जो लोग सच्चिदानन्द भगवान्का आकार नहीं मानते तथा जगत्को मिथ्या बतलाते हैं, वे असुर स्वभावके मनुष्य हैं। इन चारों प्रकारके जीवोंका ज्ञान भगवान्की त्रिगुणात्मिका मायाद्वारा आच्छादित होनेके कारण ये स्थूल और लिंग शरीरमें आत्मबुद्धि और शरीरसे सम्बन्धित स्त्री, पुत्र, परिवार और धनादिमें ममत्व बुद्धि का संसारमें पुनः-पुनः आवागमन करते हैं। इनकी मति भगवान्की तरफ नहीं जाती। इन-लोगोंको यह भी सोचनेका अवसर ही नहीं मिलता कि वे माया द्वारा आवद्ध और दुःखी हैं। इसलिये वे भगवान् नामक किसी वस्तुके शरणागत होनेकी कल्पना भी नहीं करते।

उपरोक्त चार प्रकारके नराधमोंके ठिक विपरीत चार प्रकारके जीव परमेश्वरका भजन करते हैं। वे हैं—अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी। लौकिक या पारलौकिक भोगोंकी कामना करनेवाला मनुष्य 'अर्थार्थी' है। जो शारीरिक या मानसिक संताप, विपत्ति, शत्रुभय, रोग, आततायियों तथा हिंस्र जानवरोंके आक्रमण आदिसे त्रस्त होकर उनसे छुटकारा पानेके लिये भगवान्की शरण लेता है, वह 'आर्त्त' है। सांसारिक विषय-भोगोंकी परवा न करके

आत्म-तत्त्वको जाननेका इच्छुक व्यक्ति 'जिज्ञासु' कहलाता है। और भगवत्तत्त्वके ज्ञानसे युक्त व्यक्ति-को 'ज्ञानी' कहते हैं। ये चारों प्रकारके लोग जब भगवान्का भजन करने लगते हैं, तब उत्तम हैं, किन्तु ज्ञानी भक्त सब प्रकारकी कामनाओंसे रहित होकर भगवान्के चरणोंमें एकमात्र भक्ति परायण होनेके नाते भगवान्का अत्यन्त प्रिय होता है। बहुतसे जन्मोंके अन्तमें वासुदेव ही मेरे परमाराध्य और सर्वम्भ हैं, वे अनन्त कल्याणगुणोंके आधारस्वरूप हैं—ऐसा जान कर जो स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वको वासुदेवमय दर्शन करता है, वह महात्मा कहलाता है। ऐसे महात्मा जगत्में दुर्लभ हैं।

पूर्वोक्त प्रकारके नराधम लोग अपनी भोग-वासनाओंकी पूर्ति के लिए क्षुद्र-क्षुद्र देवताओंकी आराधना करते हैं। करुणाशरुणालय अन्तर्यामी हरि ऐसे सकाम व्यक्तियोंके हृदयमें उनके इष्ट देवताओंके प्रति श्रद्धाका भाव उत्पन्न कर देते हैं तथा उनकी कामनानुसार फलका विधान भी कर देते हैं। क्योंकि देवता लोग भगवान्की आज्ञा बिना कामना का फल देनेमें असमर्थ हैं। इनका दिया हुआ फल भी अनित्य होता है। फल दे देनेके बाद देवताओंका फल-प्रापकके साथ अब कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अतः देवता लोग अपने आराधकका भविष्यमें कोई कल्याण भी नहीं करते। परन्तु भगवान्का भजन करनेसे भजनकारी निष्काम हो या सकाम हो अथवा मोक्षकी कामनासे युक्त ही न क्यों हो, करुणासागर भगवान् भक्तोंके हृदयसे विषय-वासनाओंको सर्वथा दूर कर वहाँ स्वयं विराजमान होकर उसे कृतार्थ कर देते हैं।

मायाप्रसन्न विवेक-रहित जीव नन अनन्त, सार्व-कालिक भगवान् श्यामसुन्दरको चर्म-चक्षुओंसे देखनेमें असमर्थ होकर उन्हें अव्यक्त तथा इस जगत् में प्रकट होनेपर साकार और प्रकट लीलाओंके अंतमें निराकार ठहरते हैं। परन्तु भगवान् सर्वज्ञ और सर्वेश्वर हैं। वे भूत, भविष्य और वर्तमानके अधिष्ठाता हैं।

सुख-दुःख लाभ-हानि और जय-पराजय आदि द्वन्द्वधर्मसे मोहित होकर जीवोंका ज्ञान लुप्त हो जाता है। किन्तु जिन पुण्यात्मा भक्तोंके पाप क्षय हो चुके हैं, वे द्वन्द्व मोहसे निर्मुक्त होकर परमात्माका दृढ़तासे भजन करते हैं। संसार-दुःखसे निपिड़ित होकर जो

जरा-मरणसे छूटनेके लिए भगवान्की शरण लेकर एकान्त भावसे यत्न करते हैं, वे ब्रह्मको, अध्यात्मको, समस्त कर्मोंको तथा अधिभूत, अधिदेव और अधि-यज्ञके साथ परमेश्वरको भी जान लेते हैं तथा मरण-कालमें भी भगवान्को विस्मृत नहीं होते हैं।

— श्रीदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

## शरणागति

आत्मनिवेदन—फलस्वरूप देहसमर्पण

( मानसिक )

आत्मनिवेदन कर चरणोंमें  
सुखी हुआ जीवनमें ।  
दूर हुआ दुःख रही न चिन्ता  
छाया आनन्द मनमें ॥  
अशोक अभय अमृताधार  
तुम्हारे चरण युगलका ।  
आश्रय लेकर छोड़ दिया मैंने  
भगवन् भय भवका ॥  
करूँ तुम्हारे जगका सेवन  
रहूँ न मैं फल भागी ।  
रहो सुखी तुम करूँ वही मैं  
बना चरण अनुरागी ॥  
तेरी सेवाके जितने दुःख  
लगते मुझे परम सुख ।  
सेवा सुख दुःख परम सम्पदा  
हरत अविद्याका दुःख ॥  
भूल गया इतिहास पूर्वका  
पा सेवा-सुख मनसे ।  
मैं हूँ तेरा तू है मेरा  
काम नहीं अपर धनसे ॥  
भक्ति विनोद आनन्द विभोरित  
तव सेवामें तन्मय ।  
करूँ अनुगत तेरी इच्छा  
पड़ा रहूँ तव घरमें ॥

अनुवादक—श्रीसुशील चन्द्र त्रिपाठी, एम० ए०

## श्रीएकादशीका आविर्भाव

एकादशीकी उत्पत्ति और उसकी विशेषताओंको यथार्थरूपमें जाननेके लिए अनेकों उत्सुक रहा करते हैं। इसलिए पद्मपुराणकी (क्रियायोगसार प्रकरणके चौदहवें अध्यायकी) इस आख्यायिकाको यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

किसी समय जैमिनी ऋषिने अपने गुरुदेव श्रीव्यासदेवसे बड़े ही नम्र शब्दोंमें पूछा—गुरुदेव ! मैंने आपकी कृपासे गंगाका पवित्र माहात्म्य, विष्णु-पूजाका फल, अन्नदानका माहात्म्य, जलदानकी महिमा और सब पापोंको नाश करनेवाले विप्र-चरणोदक-पानका माहात्म्य आदि विषयोंको उनके इतिहासोंके साथ श्रवण कर लिया है। आज मैं बड़ी उत्कंठासे समस्त पापोंको क्षणभरमें नाश करनेवाले एकादशी-व्रतका माहात्म्य तथा उसकी उत्पत्तिके विषयमें आपसे विस्तार पूर्वक श्रवण करना चाहता हूँ।

कस्मादेकादशी जाता तस्याः को वा विधिर्द्विज ।

कदा वा क्रियते किम्वा फलं किम्वा वदस्व मे ॥

का वा पुज्यतमा तत्र देवता सद्गुणार्णवः ।

अकुर्वतः स्यात् को दोष एतन्मे वक्तुमर्हसि ॥

( श्रीपद्मपुराण क्रियायोगसार १४ अध्याय )

अर्थात् जैमिनीने कहा—‘हे गुरुदेव ! एकादशीकी उत्पत्ति कब और किससे हुई है ? उसके उपवासकी विधि क्या है ? इसका पालन कब करना चाहिये ? तथा उसका फल क्या है ?—आप मुझे विस्तार-पूर्वक बतलावें। मैं और भी जानना चाहता हूँ कि इस व्रतके पुज्यतम अधिष्ठात् देवता कौन हैं ? तथा इस व्रतका पालन न करनेसे क्या दोष होता है ? इन प्रश्नोंका सम्यक् उत्तर देनेमें केवल आप ही समर्थ हैं। अतः मुझे बतलानेकी कृपा करें।’

जैमिनीका प्रश्न सुनकर व्यासदेव आनन्दसे पुलकित होकर भगवत-कथाका वर्णन करने लगे। वे बोले—‘हे विप्रर्षि जैमिनि ! एकादशीका सम्यक्

माहात्म्य वर्णन करनेमें केवल नारायण ही समर्थ हैं। फिर भी तुम पूछ रहे हो, इसलिए मैं संक्षेपमें ही इसे वर्णन कर रहा हूँ।

‘विश्वसृष्टिके प्रारम्भमें चराचर विश्व-प्रपंचकी सृष्टि करनेके बाद भगवान्ने मर्त्यलोकमें मानवोंका शासन करनेके लिए एक पाप-पुरुषकी सृष्टि की। उस पाप-पुरुषके सभी अंग पापोंके द्वारा ही गठित हुए थे। अर्थात् ब्रह्महत्या उसका मस्तक, मद्यपान उसकी आँखें, सुवर्णकी चोरी मुख, गुरुपति ( विमाता ) गमन दोनों कान, स्त्रीहत्या दोनों नाक, गोहत्याका पाप दोनों भुजाएँ, रक्षित धनका अपहरण गर्दन, भ्रूणहत्या ( गर्भस्थ शिशुका बध ) गलदेश, परस्त्री-गमन छातीका अगला भाग, अतीव स्वजनका बध पेट, शरणागतजनका बध नाभिदेश, आत्म-प्रशंशा कमर, गुरुनिन्दा जाँघ, कन्या-विक्रय लिंग, गुप्त कथा प्रकाश करना मलद्वार, पितृहत्या पैर और उपपातक-समूह उसकी रोमावलिर्थाँ थे। इस प्रकार विभिन्न पापों द्वारा निर्मित उस पाप-पुरुषकी मूर्ति बड़ी ही भयंकर थी। कृष्ण वर्ण और पीली-पीली आँसू-वाला वह भयंकर पाप-पुरुष स्वेच्छापूर्वक पापी लोगोंको अतिशय दुःख देने लगा। ऐसा देखकर भगवान् बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि यह पाप-पुरुष जीव को दहा ही कष्ट देता है। इन असहाय जीवोंका मेरे सिवा और कौन रक्षक है ? मैं ही इनका सृष्टिकर्त्ता और पालनकर्त्ता हूँ। दूसरी तरफ मैंने ही इनका शासन करनेके लिए—इन्हें बुरे कर्मोंसे बचाने के लिए, दुर्जन, खल तथा पापी व्यक्तियोंको ऋशे प्रदान करनेवाले इस दुष्ट पाप-पुरुषकी भी सृष्टि की है। अब ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इस पाप-पुरुषका भी दमन किया जा सके। ऐसा सोचकर भगवान् स्वयं यमराजके रूपमें प्रकट होकर रौरव आदि विविध प्रकारके नरकोंकी सृष्टि

किये। उन्होंने ऐसा नियम बनाया कि जो मूढ़ व्यक्ति इस जगत्में पाप-कर्म करेंगे, वे यमपुरीमें उपस्थित किये जायँ और वहाँ यमराजकी आज्ञासे अपने-अपने पापोंके अनुसार रौरव आदि नरक भोग करें।

इस प्रकार नियम चालू हो जाने पर एक समय भगवान् विष्णु गरुड़पर चढ़कर यमपुरीका निरोक्षण करने आये। सर्वमङ्गलमय जगदीश्वर नारायणको वहाँ आया हुआ देखकर यमराज बड़े प्रसन्न हुये और उनकी विधिवत पूजा की। इस प्रकार सर्वेश्वर भगवान् यमराजद्वारा पूजित होने पर स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान हुए। यमराज भी भगवान्के समीप ही बैठकर धीरे-धीरे बातचीत करने लगे। इसी समय दक्षिण दिशामें रोनेका शब्द सुन पड़ने लगा। यमपुरीमें रोनेका शब्द सुनकर नारायणको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने यमराजसे पूछा—यहाँ रोनेका शब्द कहाँसे आ रहा है ?

यमराजने कहा—“देव! मृत्युलोकमें जो लोग पाप कर्मों का आचरण करते हैं, वे अपने पापोंका फल इस नगरीके भीषण नरकोंमें भोग रहे हैं। पाप कर्मोंका फल भोग करना बड़ा ही कष्टप्रद होता है। इसीलिए पापीलोग नरकी यातनासे छटकट करते हुए बड़े कातर होकर रो रहे हैं। यह रोनेका शब्द उन्हीं पापियोंका है।”

यमराजकी बात सुनकर करुणामय कृष्ण जल्दी से-जल्दी उम अगद पहुँचे, जहाँसे रोनेका शब्द आ रहा था। बड़ा ही भयानक दृश्य था। चारों तरफ पापी लोग असह्य यन्त्रणाओंके मारे चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे। भगवान्को देखकर वे लोग और भी फूट-फूट कर रोने लगे। मृत्युलोकके पापियोंकी ऐसी दुर्दशा देखकर भगवान्का हृदय द्रवित हो उठा। वे मन-ही-मन सोचने लगे—‘मैंने ही इनकी सृष्टि की है। अतः मेरे वर्तमान रहते हुए भी क्या ये इसी प्रकार नरककी घोर यंत्रणाएँ सहते रहेंगे ? ऐसा कदापि नहीं हो सकता। हे जैमिनि ! भगवान्ने आगे क्या किया सुनो—

एतच्चान्यथ विप्रर्षे विचिन्त्य कुरुणामयः ।  
वभूव सहसा तत्र स्वयमेकादशीतिथिः ॥  
ततस्तान् पापिनः सर्वान् कारयामास तद्वत्तम् ।  
ते च सर्वे परं धाम ययुर्गलितकल्मषाः ॥  
तस्मादेकादशीं विष्णोमूर्तिं विद्धि परात्मनः ।  
समस्त-सुकृत-श्रेष्ठां व्रतानामुत्तमं द्विज ॥

(पद्मपुराण)

अर्थात्, ऐसा सोचकर करुणामय भगवान् कृष्ण स्वयं उसी जगह अकस्मात् एकादशी तिथिकी साक्षान् मूर्तिके रूपमें प्रकट होकर उन पापियोंसे एकादशी व्रतका पालन करवाये। ऐसा करना था कि सारे पापी अपने-अपने पापोंसे छुटकारा प्राप्त कर तत्क्षण भगवान्के परमधाम वैकुण्ठमें चले गए। इसलिए हे जैमिनि ! तुम एकादशी-तिथिको परमात्मा विष्णु का ही एक रूप समझो। यह एकादशीका व्रत सप प्रकारके सुकर्मोंसे श्रेष्ठ, समस्त व्रतोंमें शीर्षस्थानीय और त्रिभुवनको पवित्र करनेवाला है।

वक्त एकादशी तिथिको इस प्रकार त्रिभुवनको पवित्र करते देखकर पाप-पुरुष-जिसे भगवान्ने दुष्ट लोगोंका शासन करनेके लिए बनाया था—बहुत ही घबड़ाकर भगवान्के पास पहुँचा और हाथ जोड़कर उनका स्तव करने लगा। भगवान् उनके स्तव से बड़े प्रसन्न हुए और उससे कोई वर मांगनेके लिए कहा।

पाप-पुरुषने कहा—‘हे शरणागत वरसल ! मैं आपकी प्रजा हूँ। आपने ही मेरी सृष्टि की थी। मुझे आश्रय करनेवाले पापाचारी लोगोंको उनके कर्मानुसार दुःख प्रदान करना ही मेरा काम था। किन्तु आज-कल एकादशीके प्रभावसे मैं दिनोंदिन क्षीण होता जा रहा हूँ। प्रभो ! मेरे मर जानेसे आपके अंशभूत शरीरधारी समस्त जीव भव-बन्धनसे मुक्त होकर आपके परमधाम वैकुण्ठमें चले जायेंगे। इस प्रकार समस्त देही (मायाबद्ध जीव) मुक्त हो जानेसे आपकी विश्व-सृष्टि-लीला भी अपने-आप बन्द हो जायगी। क्योंकि मृत्युलोक शून्य हो जानेपर आप किसके साथ क्रीड़ा

करेंगे ? अतएव यदि आप इस विश्व-सृष्टिरूप कौतु-  
कागारमें ( बाहरी ) क्रीड़ा करना चाहते हैं तो हे  
केशव ! एकादशीके भयसे आप मेरी रक्षा करें । दूसरे-  
दूसरे हजारों पूण्यकर्म मेरा बंध नहीं कर सकते, किन्तु  
मैं एकमात्र एकादशीसे ही डरता हूँ । क्योंकि वे  
आपकी मूर्त्ति होनेके कारण मेरा बंध करनेमें समर्थ  
हैं । हे कैटभनाशन ! हे विष्णो ! मैं एकादशीके डरसे  
भागकर देवता, गन्धर्व, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट,  
पतङ्ग, नद, नदी, वन, पर्वत, जल, स्थल, समुद्र,  
स्वर्ग, मर्त्य, और पाताल—इन सबका आश्रय लिया,  
किन्तु कहीं भी निर्भय न हो सका । सब जगहोंसे हार  
कर अन्तमें आपकी शरणमें आया हूँ । हे देवदेव !  
हे सनातन ! आपके रचित अन्त कोटि ब्रह्माण्डमें  
एकादशीको सर्वत्र देख पाता हूँ । अतः कहीं भी टिक  
नहीं पाता । हे प्रभो ! मैं आपकी प्रजा हूँ । आप  
मुझे एक ऐसा स्थान बतलानेकी कृपा करें, जहाँ मैं  
एकादशीसे निर्भय होकर रह सकूँ ।'

पाप-पुरुष ऐसी प्रार्थना कर भगवान्के चरणोंमें  
गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा । उसे इस  
प्रकार रोते देख कर उसे डाढ़स देते हुए भगवान्ने  
हँस कर कहा—'हे पाप-पुरुष ! उठो, तुम किसी बात-  
की चिन्ता न करो । मैं तुमको एक ऐसा स्थान बतला  
रहा हूँ, जहाँ तुम्हें एकादशीका तनिक भी डर न रहेगा ।  
त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली इस एकादशीके दिन  
तुम अन्न ( शस्य ) का आश्रय करना । ऐसा करनेसे  
एकादशी तिथि तुम्हारा विनाश नहीं करेगी । अतः  
तुम निर्भय होकर वहाँ वास करो ।' इतना कह कर  
भगवान् अन्तर्धान हो गये और पाप-पुरुष भी अपना  
मनोरथ सिद्ध हुआ जान कर हँसता हुआ अपने  
निर्दिष्ट स्थानको रवाना हुआ ।

अतएव प्रत्येक आत्मकल्याणकामी सज्जनको  
एकादशी तिथिमें अन्न भोजन नहीं करना चाहिये ।  
संसारमें जितने प्रकारके पाप हैं, वे सभी भगवान्की  
आज्ञासे एकादशीके दिन अन्नको आश्रय कर अवस्थित  
रहते हैं । जो विधिपूर्वक एकादशीका पालन करते हैं,  
उनके समस्त पाप क्षणभरमें धुल जाते हैं तथा उनके  
नरकादिके सारे दुःख दूर हो जाते हैं । जो मनुष्य  
एकादशीके दिन मोहवश भी अन्न भोजन करता है उसे  
सर्वश्रेष्ठ पापी जानना चाहिये । मृत्युलोकमें उस तिथि  
में मनुष्यगण जो भोजन करते हैं उसके प्रत्येक प्रासके  
साथ कोटि-कोटि ब्रह्महत्याके पाप उस अन्न भोजन-  
कर्त्ताके शरीरमें प्रवेश करते हैं । इसलिये एकादशीके  
दिन अन्नको समस्त पापोंका आश्रयस्थल जानकर  
उसका अवश्य-अवश्य परित्याग करना चाहिये । मैं  
हृदयपूर्वक बार-बार कहता हूँ—'मानवो ! तुम लोग  
भी सुनो, एकादशीके दिन किसी भी हालतमें अन्न  
भोजन न करना, अन्न भोजन न करना, अन्न भोजन  
न करना । हे द्विजश्रेष्ठ जैमिनि ! ब्राह्मण, क्षत्रिय,  
वैश्य और शुद्र अथवा अन्य कोई भी जातिका  
मनुष्य क्यों न हो, एकादशी तिथि सभी लोगोंके लिये  
पालनीय है । इससे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष रूप  
चतुर्वर्गकी अनायास ही प्राप्ति होती है । इन सब  
फलोंके अतिरिक्त इनकी कृपा होनेसे कृष्ण-प्रेम रूप  
पंचम पुरुषार्थ भी प्राप्त हो जाता है । यहाँ तक कि  
यदि छलपूर्वक भी ( विना जाने भी ) एकादशी अन्न-  
का पालन हो जाय तो पालनकर्त्ताके सारे पाप तत्क्षण  
ध्वंस हो जाते हैं और वह अनायास ही वैकुण्ठधाम-  
में गमन करता है ।

—परिद्धत नवीनचन्द्र चक्रवर्ती, स्मृति-व्याकरण-तीर्थ

# हिन्दू साधु-संन्यासियोंके नियंत्रणके लिए कानूनका प्रतिवाद

विगत २७ जुलाई १९५६ को भारतीय लोक-सभामें हिन्दू साधु-संन्यासियोंका नियंत्रण करनेके लिए एक विधेयक (Bill) उपस्थित किया गया है। विधेयकका कारण बताया जाता है कि साधु-संन्यासियोंमें पापाचारी, भिखमंगे तथा समाज विरोधी आचरण करनेवाले बढ़ रहे हैं, उनका नियंत्रण हो जायगा, जिससे सच्चे साधु बदनामीसे बचेंगे। भारतीय लोक-सभामें ऐसे विधेयकके उपस्थित किये जानेसे हम बड़े मर्माहत हुए हैं। हमें इस विधेयकका पूरा विवरण प्राप्त नहीं हो सका है। पूरा विवरण प्राप्त होनेपर हम अपना यथायथ मन्तव्य प्रकाश करेंगे।

भारतकी सम्पूर्ण आईन-कानून या विधि-व्यवस्था शास्त्रीय विधिके अनुसार तैयार होती है। शास्त्रीय विधियोंसे बहिर्भूत कोई भी विधि-व्यवस्था भारतमें टिक नहीं सकती। साधु-संन्यासियोंको शास्त्र-

ही एकमात्र नियंत्रित कर सकते हैं, कोई व्यक्ति या समाज उनको कानूनके द्वारा नियंत्रित नहीं कर सकता। यों तो सभी पुराणों और स्मृतियोंमें इस कथन की पुष्टिके पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं, फिर भी प्रमाण-शिरोमणि श्रीमद्भागवतका निम्नलिखित श्लोक हम प्रमाणस्वरूप उद्धृत करते हैं—

‘सर्वत्रास्त्रलितादेशः ससद्दीपैकदण्डधृक् ।

अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥’

( श्रीमद्भा० १।२।१२ )

अर्थात्, महाराज पृथु (जिनके नामपर धरतीका नाम पृथ्वी पड़ा है) समग्र पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट थे। ऋषिकुल ब्राह्मण और अच्युत गोत्रीय—विष्णु-भक्तोंको छोड़कर उनका सातों द्वीपोंके निवासियोंपर शासन था।

साधु-संन्यासी देशके गौरव हैं, शोभा हैं। आज समग्र पृथ्वीके समस्त राष्ट्र भारतके इस गौरव और शोभाके प्रति आकृष्ट होकर अपने-अपने पारमार्थिक और सामाजिक जीवनका गठन करनेके लिए उत्सुक हो रहे हैं। भारतीय साधु-संन्यासी शान्ति-प्रिय होते हैं। इसलिये समग्र पृथ्वीके लोग भारतका मुँह देख रहे हैं—शान्ति प्राप्त करनेके लिए। राजनैतिक दृष्टिकोणसे भारतने विदेशोंमें जितना सम्मान पाया है, उससे सहस्रगुना अधिक सम्मान पाया है, धार्मिक कारणोंसे। सभी देश राजनीतिकी अपेक्षा धर्मनीतिकी श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं। धर्मनीति राजनीतिकी नियंत्रित करती है। राजनीति द्वारा धर्मनीतिका नियंत्रण करना नितान्त अवैध है।

भारतीय संविधानद्वारा सर्व-प्रथम भारतको एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया था। अतः भारतीय लोक-सभामें किसी भी धर्मका नियंत्रण करना सर्वथा गैर-कानूनी (against the constitutional Law) होगा। इसके अतिरिक्त फौजदारी दंड-विधि आईन (Penal code) और फौजदारी कार्य-विधि आईन (Criminal Procedure Code) आदि आईनोंके अनेक क्षेत्रोंमें परिवर्तन करना पड़ेगा अथवा उन कानूनोंका संशोधन करना पड़ेगा। हम यह पूछना चाहते हैं कि जिन्होंने लोक-सभामें इस विधेयकको उपस्थित किया है, उन्हें भारतीय दीवानी और फौजदारी कानूनोंके सम्बन्धमें थोड़ी भी जानकारी है या नहीं? क्या वे यह नहीं जानते कि दुर्नीति-दमन करनेके लिए सारे भारतमें एक ही कानून लागू है? दुर्नीतिका मान-दंड साधु-और असाधु दोनोंके लिये एक ही प्रकार निर्धारित किया गया है। सुतराम् दुर्नीति दमन करनेके लिये कोई पृथक् कानून प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम यह जानना चाहते हैं कि साधु चोरी करने पर अथवा असाधु चोरी करने पर उनके लिए क्या Penal code की (दंड-विधि कानून की) ३७६ धाराको नए रूपमें पृथक्-पृथक् तैयार करनी होगी?

एक साधुद्वारा बलात्कार किये जानेपर अथवा एक असाधु द्वारा बलात्कार किये जानेपर क्या Rape case की ३७६ धारा उनके लिए बदलनी पड़ेगी? कोई साधु किसीको ठगता है और कोई असाधु भी किसीको ठगता है तो उनके लिए ४२० धारामें क्या कुछ परिवर्तन किया जायगा? हमलोग जानते हैं, कि फौजदारी दंड-विधि साधु-असाधु सभीके ऊपर समान रूपसे लागू है। दुर्नीतिक घटनाओंके तारतम्यसे अथवा गुरुत्वके अनुसार दंडका तारतम्य अथवा गुरुत्व हुआ करता है। इसलिए साधु और असाधुओंके लिए पृथक्-पृथक् कानून प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता नहीं है।

यदि साधुओंकी दुर्नीतिकता, पापाचार और समाजविरोधी कार्रवाईयोंका नियंत्रण करनेके लिए पृथक्-रूपमें कानून प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता है, तब काँप्रेसकी तथा ऐसी ही अन्य संस्थाओंकी दुर्नीतियों, पापाचारों और समाज-विरोधी कार्रवाइयोंका नियंत्रण करनेके लिए भी पृथक् कानूनकी आवश्यकता है। क्या कोई निरपेक्ष सदस्य लोक-सभामें इस प्रकारका विधेयक उपस्थित करेंगे? 'Charity begins at home'—बदरता अपने घरसे ही प्रारम्भ होनी चाहिए। साधु-संन्यासियोंका नियंत्रण करनेके पहले इन राजनैतिक पंढाओंका नियंत्रण होना आवश्यक है। चोर-बाजारी कानून [Black marketing law] आजतक भी प्रस्तुत नहीं हो पाया है। सुना जाता है, वर्त्तमान शासन-तंत्रके कुछ लोग नानाप्रकारकी दुर्नीतियोंको प्रश्रय दिया करते हैं। हमारे माननीय प्रधान मंत्री श्रीनेहरूजी अपने भाषणोंमें यदाकदा इन दुर्नीतियोंके लिए गंभीर दुःख प्रकाश करते हैं। हम जानना चाहते हैं कि उनका नियंत्रण करनेके लिए आजतक क्या व्यवस्था हुई है? अथवा आगे क्या व्यवस्था होने जा रही है? अवश्य, "बलियां सः न दोषाय" के अनुसार हो सकता है, वे उससे रिहाई पा जावें।

साधु-संन्यासियोंका विचार साधु-संन्यासी ही

करते हैं। साधु-संन्यासियोंके रूपको बेचारे असाधु लोग क्या समझेंगे? जो किसी दिन साधुके समीप तक नहीं गए, वे साधुताका विचार क्या करेंगे? विधेयक प्रस्तुत करनेके पहले साधु किसे कहते हैं— इसकी एक कानून-संगत Schedule (तफसील) प्रस्तुत करनी होगी। उस तफसीलसे बाहरी लोगोंकी संज्ञा—असाधु दी जानी चाहिए एवं असाधु किसे कहते हैं, इसकी भी एक तफसील (Schedule) प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता होगी। जो लोग साधु और असाधु इन दोनों तफसीलोंके अन्तर्गत न आवें, उनलोगोंकी भी एक पृथक् तफसील निर्माण करके उन्हें मानव जातिसे बहिर्भूत रखा जाय। क्योंकि श्रीगीताजीके अनुसार जगत्में दो ही प्रकारके मनुष्य होते हैं—देवता और असुर अर्थात् साधु और असाधु। इनके अतिरिक्त दूसरोंको मनुष्य जातिमें गणना नहीं की गई है।

असाधुओंके नियंत्रणकी कोई व्यवस्था नहीं दीख पड़ती। किन्तु साधु-संन्यासियोंका नियंत्रण करनेके लिए हमारे असाधु भाई कमर कसे हुए हैं। आजकल चोटका युग है। कलमें असुरोंकी संख्या अधिक है। अतएव साधुओंपर अत्याचार करनेके लिये बहुमतसे कानून बनाये जा रहे हैं। ऐसी दशा में अल्प-संख्यकोंकी रक्षा (Minority Protection) कैसे होगी? आज पाकिस्तानमें संख्यागरिष्ठ मुसलमान अल्प-संख्यक हिन्दुओं पर जिस प्रकार अत्याचार कर रहे हैं उसी प्रकार भारतमें भी संख्यागरिष्ठवर्ग अल्प-संख्यक साधुओं पर अत्याचार करना चाहता है

ऐसे विधेयकोंकी जड़में साधुओंके प्रति विद्वेष

और हिंसाकी भावनाएँ ही लक्ष्य की जाती हैं। दुराचारी, ठग आदि असाधुवर्ग अपने-अपने दुराचारों और दुर्नीतियोंके कारण साधु पुरुषोंद्वारा समाजमें अपमानित और लज्जित होकर प्रतिहिंसा-स्वरूप कलिकालोचित साधु-नियंत्रणके लिए कानून प्रस्तुत कर रहे हैं।

हम इस विधेयककी आड़में उनलोगोंका और भी एक दूसरा असत् उद्देश्य लक्ष्य करते हैं। वह यह कि बहुतसे दुराचारी ठग, साधु-संन्यासियोंका बाना पहन कर साधुओंकी सूचिमें अपना नाम रजिस्ट्री करवा कर अपने असत् उद्देश्योंको पूर्ण करनेका—समाजके निरीह नर-नारियोंको ठगनेका सुवर्ण अवसर लाभ करेंगे। इस प्रकार इस विधेयकके कानून बन जाने पर दुर्नीति क्रमशः बढ़ती ही जायगी। इस पर कानून क कोई असर न होगा।

साधु-संन्यासी संसारके समस्त भोगोंको त्यागकर परतस्त्वके अनुशीलनमें निरत रहते हैं। वे लोक-समाजमें साधुके रूपमें अपना परिचय देना नहीं चाहते। इस पर भी “मैं रजिस्टर्ड या लाईसेंस्ड साधु हूँ”—ऐसा परिचय देना उनके लिए और भी लज्जाकी बात होगी। भारतीय संस्कृतिमें साधु-संन्यासीका जो स्थान है, वह किसीका नहीं है। सुदूर अतीत कालसे बड़े-बड़े सम्राटोंसे लेकर दीन-दुःखी सभी उनके चरणोंकी सेवाकर जीवनमें शान्ति प्राप्त करते आये हैं। ऐसे सर्वतन्त्र-स्वतंत्र संसारकी मायासे मुक्त या उसकी साधनामें तत्पर कोई भी साधु-संन्यासी सरकारी सिरीस्तामें अपना नाम रजिस्ट्री करवाने जायेंगे क्या? विशेषतः

लाइसेंस देनेवाला अधिकारी अर्थात् जिलाधीश यदि कहीं मुसलमान, ईसाई, बौद्ध अथवा अन्यकोई हिन्दू-विरोधी व्यक्ति हुआ तब वह हिन्दू-शास्त्रानुमोदित साधुताका विचार ही क्या कर सकता है ? उक्त श्रेणीके जिलाधीश महोदय अपनी धार्मिक विचार-धाराके अनुरूप विचार करनेके लिए बाध्य होंगे। ऐसी परिस्थितिमें साधु-संन्यासी अपना नाम रजिस्ट्रि करवानेके लिए ऐसे व्यक्तियोंके निकट जायेंगे ही क्यों ?

‘साधु’ कहनेसे गृहस्थ व्यक्तियोंको समझा जायगा या नहीं ? अवश्य, ‘संन्यासी’ कहनेसे गृहस्थ व्यक्तियों का बोध नहीं होता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारियों तथा वानप्रस्थियोंको संन्यासी नहीं कहा जाता। तब इन्हें किस नामसे सूचित किया जायगा ? यदि इन लोगोंको ‘साधु’ के अन्तर्गत माना जाय तो ब्रह्मचारी गृहस्थ और वानप्रस्थ—इन तीनों श्रेणियोंके लोगोंको साधु कहना होगा। अथवा गृहस्थोंको उस श्रेणीसे बाहर कर देने पर ये गृहस्थ असाधुवर्गमें आ जायेंगे। ऐसी दशामें किसी उन्नत श्रेणीके गृहस्थ व्यक्तिको ‘असाधु’ कहनेसे दण्ड-विधि की ३५२ धारा ( गाली-गलौज ) के अन्तर्गत अपराध नहीं माना जायगा अथवा उसी दण्ड-विधिके अनुसार धारा ५०० के अन्तर्गत मानहानिका अपराध भी नहीं मानना होगा।

यदि कोई व्यक्ति गृहस्थ आश्रममें रह कर ही साधुवृत्ति अवलम्बन करना चाहता है तो उसे भी सविधि कानूनी रजिस्ट्री करवा कर लाइसेंस प्राप्त करना होगा। हम जिलाधीशकी अपेक्षा भी ऊँचे-ऊँचे ऐसे पदाधिकारियोंको जानते हैं जो उर्दुपुंङ्

तिलक आदि धारण कर विचारालयों या आफिसोंमें उपस्थित होकर अपना-अपना काम करते हैं। यदि उन्हें साधुकी संज्ञा दी जाय तो उनको भी जिलाधीश के पास अपनी साधुताका परिचय-पत्र और लाइसेंसके लिए प्रार्थना-पत्र पेश करना होगा। जिलाधीश महोदय उसपर आवश्यक जाँच कर जैसा उचित समझेंगे उनको लाइसेंस देंगे या नहीं देंगे अथवा उनका चालू लाइसेंस भी रद्द कर देंगे और उचित समझने पर उन्हें दण्ड भी देंगे।

एक बात और है। यदि जनताकी इच्छाओंके विरुद्ध यह विधेयक कानूनके रूपमें गृहीत भी हो गया, तो इसकी भी बड़ी दशा हागा, जैसी अवस्था विधवा-विवाह बिल अथवा शारदा बिलकी हुई है। कानून संविधानालयके ताल पर ही रखा रह जायगा। सुनते हैं, विधेयक कानून बन जाने से Federal Court में संविधानके विरुद्ध मुकदमा भी दायर किया जा सकता है।

अतः हम किसी भी ऐसे कानून निर्धारित किये जानेके विरोधी हैं। लोक सभाके सदस्योंसे हमारी यह विनीत प्रार्थना है कि वे इस विधेयकको रद्द कर दें। हम भारतके समस्त रंवाद पत्रकारोंसे भी अनुरोध करते हैं कि वे अपनी सारी शक्तियोंको लगा कर साधु-संन्यासी-नियन्त्रण विधेयकका प्रबल प्रतिवाद करें। हम भारतीय समस्त जातीय समाजसे विशेषतः समस्त साधु-संन्यासियोंसे निवेदन करते हैं कि वे अपनी साधु-उचित नीतिसे घोर विरोध करके विधेयकको वापस लेनेके लिए बाध्य करें।

साधु सावधान ! साधु सावधान !! साधु सावधान !!!

—परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज  
प्रेसिडेण्ट, भोगोड़ीय वेदान्त समिति श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

# श्रीश्रीराधा-विनोदविहारि-तत्त्वाष्टकम्

( श्रीकृष्णस्य गौर-कान्ति-प्राप्ति-हेतुः )

[ परमहंस-परिव्राजकाचार्यवर्येणाष्टोत्तरशतश्री श्रीमता भक्ति-प्रज्ञान केशव-गोस्वामि-महाराजेन विरचितम् ]

राधा-चिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता ।  
श्रीकृष्ण-चरणं बन्दे राधालिङ्गित-विग्रहम् ॥१॥

सेव्य-सेवक-सम्भोगे द्वयोर्भेदः कुतो भवेत् ।  
विप्रलम्भे तु सर्वस्य भेदः सदा विवर्द्धते ॥२॥

चिल्लीला-मिथुनं तत्त्वं भेदाभेदमचिन्त्यकम् ।  
शक्ति-शक्तिमतोरैक्यं युगपद्वर्त्तते सदा ॥३॥

तत्त्वमेकं परं विद्यात् लीलया तद् द्विधा स्थितम् ।  
गौरः कृष्णः स्वयं ह्येतद् उभावुभयमाप्नुतः ॥४॥

सर्वे वर्णाः यत्राविष्टाः गौर-कान्तिर्विकाशते ।  
सर्व-वर्णेन हीनस्तु कृष्ण-वर्णः प्रकाशते ॥५॥

सगुणं निर्गुणं तत्त्वमेकमेवाद्वितीयकम् ।  
सर्व-नित्य-गुणैर्गौरः कृष्णो रसस्तु निर्गुणैः ॥६॥

श्रीकृष्णं मिथुनं ब्रह्म त्यक्त्वा तु निर्गुणं हि तत् ।  
उपासते मृषा विज्ञाः यथा तुषावघातिनः ॥७॥

श्रीविनोदविहारी यो राधया मिलितो यदा ।  
तदाहं बन्दनं कुर्यां सरस्वती-प्रसादतः ॥८॥

इति तत्त्वाष्टकं नित्यं यः पठेत् भद्रयान्वितः ।  
कृष्ण-तत्त्वमभिज्ञाय गौरपदे भवेन्मतिः ॥९॥

## श्रीश्रीराधाविनोदविहारी तत्त्वाष्टकका भावार्थ

श्रीमती राधारानीके मान करने पर उनके विरहमें अतिशय निमग्न होनेसे जिनकी कृष्णवर्णरूप कान्ति विलुप्त होकर श्रीमती राधा जैसी हुई थी, उन राधाके चिह्नोंसे ( कान्तिसे ) युक्त-विग्रह--श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी मैं बन्दना करता हूँ । अथवा ( मान भङ्ग होने पर ) श्रीमती राधाद्वारा आलङ्कित श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी बन्दना करता हूँ ॥१॥

जब सेव्य अर्थात् भोक्ता भगवान् अपने भोग्य सेवकको उसके साथ मिलित होकर सम्यक् रूपसे भोग करते हैं, तब उनमें भेद ही कहाँ रहता है ? अर्थात् उनमें अभेद ही माना जाता है । दूसरी तरफ, विप्रलम्भ अर्थात् विरह उपस्थित होनेपर उन सबमें भेद विशेष-रूपसे उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है ॥२॥

शक्ति और शक्तिमानका ऐक्य-स्वरूप, चिल्लीला-मिथुन-तत्त्व नित्यकाल अचिन्त्य भेदाभेदरूपमें युगपत् वर्त्तमान रहता है ।

अर्थात्, परतत्त्व-वस्तु कभी भी निःशक्तिक नहीं है । उस तत्त्वमें शक्ति और शक्तिमान् एकत्व रूपमें नित्य विराजमान रहते हैं । वे पूर्ण चेतनमय लीला-पुरुषोत्तम, स्वयं मिथुन-विग्रह हैं अर्थात् स्त्री-पुरुष (शक्ति-शक्तिमान) के सम्मिलित विग्रह हैं । वही मिथुन विग्रह श्रीराधा-कृष्ण अथवा गौरतत्त्व हैं । उनमें भेद और अभेदरूप विरुद्ध धर्म उनकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे युगपत् नित्य वर्त्तमान होता है ॥३॥

पर-तत्त्व 'एक' है; परन्तु वह एक होनेपर भी लीलाद्वारा गौर और कृष्ण--पृथक्-पृथक् दो रूपोंमें अवस्थित होता है । वे ( दोनों ही ) स्वयं परतत्त्व-वस्तु हैं, अथवा तत्त्वतः गौर ही स्वयं कृष्ण हैं तथा ये उभय रूप ही उभयताको प्राप्त होते हैं अर्थात् श्रीगौरसुन्दर श्यामसुन्दर कृष्ण होते हैं तथा श्याम-सुन्दर कृष्ण गौरसुन्दर होते हैं ॥४॥

यहाँ पर आधुनिक जड़ वैज्ञानिकोंके सिद्धान्त-

द्वारा श्रीगौर और कृष्णरूप उपास्य वस्तुओंका तत्त्व निरूपण किया जाता है--

जहाँ समस्त वर्णों ( रङ्गों ) का एकत्र समावेश होता है, वहाँ 'गौर' कान्तिका विकास होता है । जैसे सूर्यमें समस्त रङ्गोंके वर्त्तमान रहनेसे उनका रङ्ग गौर ( गोरा ) है । दूसरी तरफ, जहाँ समस्त वर्णोंका अभाव रहता है अर्थात् जहाँ कोई भी रङ्ग नहीं होता, वहाँ कृष्ण अर्थात् काला प्रकाशित होता है क्योंकि वैज्ञानिकोंके मतानुसार काला कोई रङ्ग नहीं है ॥५॥

पूर्व श्लोकके 'वर्ण' को इस श्लोकमें 'गुण' शब्दसे इङ्गित कर श्रीगौर-तत्त्वको भी श्रीकृष्णके समान उपास्य तत्त्व प्रतिपादित करते हैं--

सगुण और निर्गुण तत्त्व एक और अद्वितीय है । समस्त सद्गुणोंकी समष्टि ही श्रीगौरसुन्दर हैं तथा निर्गुणमें अर्थात् सर्वप्रकार गुणहीनतामें श्रीकृष्ण रस-स्वरूप हैं । अर्थात् परतत्त्व वस्तु स्वयं रस स्वरूप हैं; रस निर्गुण और अप्राकृत तत्त्व है, प्राकृत नहीं ॥६॥

श्रीकृष्ण अथवा गौर--मिथुन ब्रह्म हैं । उनको ( उनका भजन ) परित्याग कर मिथ्याज्ञानी जन ( अज्ञानी ) भूसा कूटनेवालोंकी तरह निर्गुण ब्रह्मकी व्यर्थ ही उपासना करते हैं अथवा भूसा कूटनेवाले चावल पानेकी आशासे जिस प्रकार व्यर्थ ही परिश्रम करते हैं, उसी प्रकार ज्ञानीजन भी कृष्णसेवा परित्याग कर निर्गुण ब्रह्मकी उपासना द्वारा केवल श्रम-ही-श्रम प्राप्त करते हैं अर्थात् उससे यथार्थ मुक्ति कभी नहीं मिलती ॥७॥

जब श्रीविनोदविहारी कृष्ण श्रीमती राधिके साथ मिलित होते हैं, तब श्रील सरस्वतीके प्रसादसे अर्थात् श्रीगुरुदेवकी कृपासे ( दर्शन लाभ कर ) मैं उनकी बन्दना करता हूँ ॥८॥

जो इस तत्त्वाष्टकको श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन पाठ करेंगे, वे श्रीकृष्ण तत्त्वको पूर्णरूपसे अवगत होकर श्रीगौर-सुन्दरके चरणोंमें मति लाभ करेंगे ॥९॥

## सदाचार (२)

भगवद्भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ सदाचार है। यद्यपि इस भक्तिके अनन्त भेद हैं तथापि शास्त्रोंमें ६४ प्रकारकी भक्तिको ही प्रधान माना गया है। प्रत्येक कल्याणकामी साधकको भक्तिके इन अङ्गोंका यथाशक्ति पालन करना चाहिए। भक्तिके ६४ अङ्ग ये हैं —

(१) गुरु पदाश्रय, (२) गुरुके निकट कृष्णदीक्षा और शिक्षा, (३) विश्वासपूर्वक गुरुसेवा, (४) साधुमार्गका अनुसरण, (५) स्वधर्मकी जिज्ञासा, (६) कृष्णके उद्देश्यसे भोग-विलासका त्याग, (७) द्वारका आदि धामोंमें तथा गङ्गाके निकट वास, (८) जीवननिर्वाहोपयोगी यथायोग्य विषय या व्यवहार स्वीकार, (९) एकादशी, जन्माष्टमी आदि हरिवासरोंका सम्मान (१०) आँवला और पीपलके वृक्षोंको गौरव दान, (११) कृष्ण वहिमुख व्यक्तियोंका संग त्याग, (१२) अनाधिकारीको शिष्य करना, (१३) आढम्बरपूर्ण लक्ष्मों (महोत्सव आदि) का परित्याग, (१४) अनेक ग्रन्थोंका पठन-पाठन और व्याख्यावाद परित्याग, (१५) व्यवहारमें कृष्णताका त्याग (१६) शोकादिके बशमें न हाना, (१७) अन्य देवताओंकी अवज्ञा न करना, (१८) प्राणी-मात्रको उद्देग न देना, (१९) सेवापराध और नामापराधसे सर्वदा बचना. (२०) भगवान् और भगवद्भक्तोंकी निन्दा आदि भवण न करना, (२१) वैष्णव-चिह्न धारण, (२२) हरिनाम-क्षर धारण, (२३) निर्माल्य (भगवान्को दी हुई माला) आदि धारण, (२४) भगवान्के आगे नृत्य, (२५) श्री गुरु, वैष्णव और भगवान्को दण्डवत्-प्रणाम, (२६) उन्हें देखकर आसनसे उठकर अभिवादन, (२७) अनुव्रज्या अर्थात् श्रीमूर्तिका अनुगमन करना, (२८) भगवान्के मन्दिरोंमें जाना, (२९) मन्दिर परिक्रमा, (३०) अर्चन, (३१) परिचर्या अर्थात् सेवा, (३२) गान, (३३) भगवत्कृपाकी प्रतिज्ञा, (३४) त्रिसंध्या आचमनपूर्वक जप, (३५) विज्ञप्ति अर्थात्

दीनतासूचक प्रार्थना, (३६) स्तव, (३७) भगवत् प्रसाद आस्वादन, (३८) श्रीचरणामृत ग्रहण, (३९) धूपमाल्यादिका सौरभ ग्रहण, (४०) श्रीमूर्तिका स्पर्श, (४१) श्रीमूर्तिका दर्शन, (४२) आरति और उत्सव आदि दर्शन, (४३) श्रीहरिके नाम, रूप, गुण और लीलाओंका श्रवण, (४४) संकीर्तन, (४५) स्मरण, (४६) ध्यान, (४७) दास्य, (४८) सख्य, (४९) आत्मनिवेदन, (५०) अपनी प्रिय वस्तु कृष्णको समर्पण, (५१) श्रीकृष्णके सुखके लिए निरन्तर चेष्टा, (५२) भगवान्के चरणोंमें शरणागति, (५३) तुलसी सेवा, (५४) श्रीमद्भागवत् आदिको सम्मान देना, (५५) भगवान्के आविर्भाव स्थान मथुरा आदिका माहात्म्य, श्रवण और कीर्तन करना तथा उन धामोंकी परिक्रमा आदि करना, (५६) वैष्णवोंकी सेवा, (५७) शक्तिके अनुसार सामप्रियोंसे साधुओंकी गोष्ठीमें महोत्सव, (५८) चानुर्मास्य व्रत विशेषरूपसे कार्तिक मासमें नियम-सेवा पालन, (५९) भगवान्के जन्मके दिन उत्सव, (६०) श्रद्धापूर्वक श्रीमूर्तिकी पूजा, (६१) रसिक भक्तोंके साथ श्रीमद्भागवत्का अर्थ आस्वादन करना, (६२) स्वजातीय स्निग्ध अथवा अपनेसे श्रेष्ठ साधु-संतोंका संग, (६३) श्रीनाम संकीर्तन, (६४) मथुरा आदि भगवद्दामोंमें वास। भक्तिके इन अङ्गोंका श्रद्धापूर्वक पालन करना ही सर्वश्रेष्ठ सदाचारका पालन करना है।

उपर्युक्त भक्त्यांगोंमें नामापराध और सेवापराध से बचनेके लिए कहा गया है। इनमें नामापराध दस प्रकारका होता है:—

(१) श्रीहरिनामका माहात्म्य प्रचार करनेवाले साधु-संतोंकी निन्दा करना।

(२) मङ्गलमय भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीलामें बुद्धि द्वारा भेद दर्शन करना अर्थात् भौतिक

पदार्थोंकी तरह भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीलाको भगवान्से भिन्न मानना, अथवा शिव आदि देवताओंको भगवद्भक्त न मानकर उन्हें स्वतन्त्र ईश्वर मानना ।

(३) तत्त्वविद् गुरुको मरणशील मानव समझना ।

(४) वेद और सात्त्वत पुराणादि शास्त्रोंकी निन्दा ।

(५) हरिनाम-माहात्म्यको अतिस्तुति मानना ।

(६) हरिनामको काल्पनिक समझना ।

(७) नामके बल पर पाप करते रहना ।

(८) अन्यान्य शुभ कर्मोंको श्रीहरिनामके समान मानना ।

(९) श्रद्धाहीन तथा नाम श्रवणसे विमुख लोगोंको नामका उपदेश देना ।

(१०) नाम-माहात्म्य श्रवण करने पर भी 'अहं' और 'मम' रूप देहात्म-बुद्धिसे युक्त होकर भगवन्नाममें अनुराग न होना ।

इन दस नामापराधोंका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करना भी सदाचारके अन्तर्गत है ।

**सेवापराध**—पादुका पहनकर मंदिरमें गमन, जन्माष्टमी, रामनवमी, दोल पूर्णिमा आदि भगवान्के जन्म तिथियोंका पालन न करना, भगवान् और भक्तोंको प्रणाम न करना, अशौच अवस्थामें भगवान्को प्रणाम, एक हाथसे प्रणाम अथवा हाथमें मालिका या प्रन्थ लेकर प्रणाम, श्रीविग्रहके सामने दूसरोंकी परिक्रमा, भगवान्के सामने—पैर पसारना, जाँघ या घुटनोंको भुजाओं द्वारा बंधनकर बैठना, शयन, भोजन, झूठ बोलना, उच्च भाषण, परस्पर बातचीत करना, झगडा करना, किसीको डाँटना या प्रीतिकरना, पर-निन्दा, पर-स्तुति, सामर्थ्य रहने पर भी हीन या थोड़ी सामर्थियोंसे पूजन, धन रहने पर भी भगवान्के उत्सवोंमें कृपणता, अनिवेदित द्रव्य भोजन, समयोपयोगी उत्पन्न द्रव्य (फल, शाक, अन्न आदि) भगवान्को अर्पण नहीं

करना, संप्रहीत द्रव्योंका अप्रभाग दूसरोंको देकर अवशेष अंश भगवान्को अर्पण करना, श्रीमूर्तिके सामने पीठ फिराकर बैठना, श्रीमूर्तिके सामने श्रीगुरुदेवके अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्तिको प्रणाम करना, अन्य देवताओंको निन्दा करना, विपयी व्यक्तियोंका अन्न भोजन करना, अन्धकार घरमें श्रीमूर्तिका स्पर्श करना, विधियोंको उलंघन कर स्वेच्छापूर्वक, श्रीमूर्तिकी सेवा करना, बिना शब्द किये या कोई वाद्य बजाये श्रीमंदिरमें प्रवेश, पूजाके समय मौन भङ्ग करना, गंध-माला देनेके पूर्व-ही धूप दान, अयोग्य (वासी, शुष्क, मलिन, आदि) पुष्पोंसे पूजन, दन्तधावन न कर पूजा करना, स्त्री-समागमके बाद बिना स्नान किये श्रीमन्दिरमें प्रवेश, दीप-स्पर्श कर, शव स्पर्श कर एवं अधीत या मलिन वस्त्र पहनकर पूजा, पूजाके समय क्रोध करना, मृतक दर्शन, श्मशानमें गमन, गाँजा और अफीमका सेवन करना, तेल लगाकर हरिसेवा करना, भक्ति-शास्त्रोंके प्रति अनादर भाव रखकर अन्यान्य शास्त्रोंके प्रति आदरका भाव प्रकाश करना, आसुरिक बेलाओंमें भगवन् पूजा, जमीन पर बैठकर पूजा करना, मूर्तिको स्नान कराते समय बाँया हाथ लगाना, तिरछा पुंङ्ग धारण करना, बिना पैर धोये मंदिरमें प्रवेश, अवैष्णव व्यक्तियों द्वारा रंधन की गयी सामग्रियोंको भगवान्को निवेदन करना, अवैष्णव लोगोंके सामने अर्चन, गुरु-पूजा न कर भगवान्की पूजा करना, भगवान्के नामसे शपथ ग्रहण करना—ये सब सेवापराध हैं । इनका वर्जन करना भी सदाचार है ।

तीव्र गन्धोंवाला अथवा गन्धहीन पुष्प भगवान्को अर्पण नहीं करना चाहिए । पद्म, तुलसी, वकुल और अगस्त ( बक ) पुष्पोंके अतिरिक्त अन्य वासी अथवा शुष्क पुष्पोंसे पूजा नहीं होती । धतूरा, अपराजिता, सिरीस और अर्क पुष्पोंसे विष्णुकी पूजा नहीं होती । शुष्क, दलित, वासी, भूपतित, छिद्रयुक्त, कीटयुक्त, उग्र गन्धयुक्त पुष्पोंसे या जिस पुष्पको हाथमें लेकर प्रणाम किया गया हो अथवा जलमें डूबोकर

धोये गये पुष्पांसे अर्चन नहीं करना चाहिए । अपवित्र स्थानके, अपवित्र वस्तुसे संलग्न, सूँधे हुए और अधीत वस्त्रमें रखे गए पुष्प वर्जनीय हैं ।

**कृष्ण-कृष्ण**—उत्तरारणपूर्वक ब्रह्ममुहूर्त्तमें शय्या त्याग करनी चाहिए । फिर हाथ-पैर धोकर दाँतोंको धोना चाहिए । अनन्तर रातके पहने हुए कपड़ोंको उतारकर दूसरे शुद्ध कपड़े पहनना चाहिए तथा श्रीगुरुदेव और श्रीकृष्णका स्मरण कर जपदि करना चाहिए । इसके बाद अपने-अपने कार्योंमें लग जाना चाहिए । प्रत्येक कार्योंमें अपने इष्टदेवका स्मरण करना चाहिए । समस्त कर्मोंको भगवानकी प्रीतिके लिए ही करना कर्त्तव्य है । भगवानकी सेवासे भगवानके सुखकी ही कामना करनी चाहिए, अपने सुख अथवा अन्यान्य किसी भी फलकी कामना नहीं रखनी चाहिए । कपटताका सर्वथा वर्जन करना चाहिए । दीन और सरल व्यक्तियोंके ऊपर ही भगवानकी कृपा होती है । कपट व्यक्ति बुद्धिमान होने पर भी भगवानकी कृपा नहीं पा सकता । इसलिए सज्जन व्यक्तियोंको चाहिये कि वे दम्बका परित्याग कर सरल और निष्कपट होकर भगवानका भजन करें ।

हमें सदा स्मरण रखना चाहिए कि भगवान् सर्वत्र हैं और वे हमारे हृदयमें विराजमान होकर सर्वदा ही हमारी रक्षा कर रहे हैं । भगवान् द्वारा प्रेरित होकर ही हम भगवानकी सेवामें लगे हुए हैं । भगवान् कृपा कर हमें जिस काममें नियुक्त करते हैं, शरणागत हम उनके आदेशसे वही करते हैं । किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि यह भाव केवल मौखिक ही न हो, बल्कि आन्तरिकतासे पूर्ण हो । समस्त जगत् भगवान् द्वारा नियंत्रित, रक्षित और पालित हो रहा है—ऐसा सोचकर 'मैं करता हूँ' इस अहंकार को दूर कर 'क्या करता हूँ'—इस शरणागत सेवकके अभिमानसे भगवानकी सेवा करनेकी कामना करनी चाहिए । 'हे भगवन् ! मैं कब अपना कर्त्तृत्वाभिमान छोड़कर केवल तेरी सेवाके लिए ही समस्त कर्मोंको कर सकूँगा—इस प्रकार भगवानके चरणोंमें प्रार्थना कर सेवामय जीवन बिताना ही सदाचार है ।

निष्पाप वृत्तिका अवलम्बन कर जीविका निर्वाह करना चाहिए । भगवान्के आश्रित व्यक्तियोंको अपने भरण-पोषणकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । क्योंकि जो विश्वम्भर भगवान् सम्पूर्ण जगत्का पालन कर रहे हैं, क्या वे अपने आश्रित व्यक्तिकी रक्षा न करेंगे ? भगवान् अपने आश्रितोंकी अवश्य ही रक्षा करते हैं । शास्त्र कहते हैं—

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः ।

योऽसौ विश्वम्भरो देवः कथं भक्तानपेक्षते ॥

स्नेह और प्रलोभनके वश होकर न तो किसीका शिष्य होना चाहिये और न किसीको शिष्य ही करना चाहिए । एक वर्ष तक एक-दूसरेको परस्पर परीक्षा करनेके बाद उचित समझने पर गुरु-शिष्यका सम्पर्क स्वीकार करना चाहिए । ऐसा न होनेसे अमंगल होनेकी संभावना रहती है । जो गुरु संसारसे उद्धार कर हमें भगवान्के चरणों तक पहुँचानेकी सामर्थ्य नहीं रखते, वैसे गुरुसे दूर रहकर सद्गुरुका चरण-श्रय करना ही हमारा एकान्त कर्त्तव्य है । यही सदाचार है ।

श्रीगुरु और श्रीगोविन्दके चरणोंमें सर्वतोभावेन शरणागत होकर, निर्भय और निश्चित होकर आनन्द पूर्वक भगवानका भजन करना चाहिए । हरिनामके आचार्य श्रीगुरुदेवके चरणोंमें तथा हरिनाममें सुदृढ़ विश्वास रखना चाहिए । श्रीगुरु-निष्ठाके बिना श्रीनाम के प्रति निष्ठा होना असंभव है । जिसे शिक्षकके प्रति निष्ठा नहीं है, उसे उस शिक्षककी शिक्षाके प्रति कैसे निष्ठा हो सकती है । गुरुभक्ति जगत्के मूलाधार या मूलभित्ति हैं । भित्ति कमजोर होनेसे साधन कैसे सफल हो सकता है ? गुरुकी कृपा बिना भक्ति असंभव है । इसलिए गुरुदेवको भगवानका परम-प्रिय जानकर तन, मन और वचनसे उनकी श्रद्धापूर्वक सेवा करते हुए भगवानका भजन करना ही शास्त्रकी विधि है । गुरु-सेवा ही सर्वोत्तम धर्म है ।

“गुरुशुश्रूषणं नाम सर्वधर्मोत्तमोत्तमम् ।”  
( श्रीहरिभक्तिविलास )

श्रीगुरुदेवकी आज्ञाका उलङ्घन कदापि नहीं करना चाहिये । ऐसा करनेसे महाअपराध होता है । “गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया” । श्रीगुरुदेवका नाम उच्चारण करनेके समय उनके नामके पहले ॐ विष्णुपाद ‘श्री श्रील’ आदि शब्द प्रयोगकर प्रणाम करना चाहिए । श्रीगुरुदेवकी शय्या, पादुका, आसन, वसन और छायाको कभी भी लाँघना नहीं चाहिए । उनके सामने पैर पसारना, जंभाई लेना, हँसना और जोरसे बोलना सर्वथा वर्जनीय है । गुरुदेवके सामने उनकी आज्ञाके बिना किसीको प्रणाम करना उचित नहीं है । उनके सामने पाण्डित्य अथवा प्रभुता प्रकाश नहीं करना चाहिए । जहाँ कहीं भी गुरुदेवको दर्शन करे, जमीन पर गिर कर प्रणाम करना चाहिए । श्रीगुरुदेवकी गति, स्वर, और चेष्टाओंका अनुकरण नहीं करना चाहिए । कोई भी वस्तु श्रीगुरुदेवको निवेदन किये बिना स्वयं भोजन नहीं करना चाहिए । गुरुदेवकी अबज्ञा सहना केवल पाप ही नहीं है प्रत्युत् आत्माको अधः पतित करनेवाला महाअपराध है । गुरुको उपदेश नहीं देना चाहिए । श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृतमें बड़े ही दुःखके साथ लिखा है—‘शिष्य हर्षया गुरुके उपदेशे, भय नाहि करे ।’ साधु और गुरुकी बातोंका प्रतिवाद

न कर उनका हृदयानुवाद कर लेना चाहिए । इसीसे कल्याण होगा ।

यथासाध्य पवित्र होकर हरिसेवा करनी चाहिए । श्रीहरिनामको साक्षात् जगदीश्वर, नित्यारध्य, नित्योपास्य और प्राण-प्रिय समझना चाहिए । श्रीनामको ही अपना जीवन बनाना चाहिए । ऐसी चेष्टा करनी चाहिए, जिससे हमारा जीवन हरिनाममय हो उठे । चलते-फिरते, उठते बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते दिन-रात सब समय हरिनाम करना हमारा अवश्य कर्त्तव्य है । तृणसे भी दीन-हीन, घृत्नकी तरह सहिष्णु, अमानी और मानद् होकर सर्वदा हरिनाम करनेके लिए दृढ़प्रतिज्ञ और यत्नशील होना होगा । श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्य-चरितामृत, श्रीभागवत-पत्रिका और अन्यान्य नित्यमङ्गलकर शास्त्र-समूहका अनुशीलन करना चाहिए । अपने इष्ट श्रीगुरुदेव, श्रीगोविन्द, महामन्त्र श्रीनाम, शास्त्र और भक्त आदि नित्यवस्तुओंके प्रति आन्तरिक प्रीति होनी चाहिए । अनित्य वस्तु या व्यक्तियोंके प्रति आसक्ति या प्रीति बन्धनका कारण है, किन्तु श्रीहरि-गुरु-वेष्णवोंके प्रति जो प्रीति होती है, वह भगवत्प्राप्तिका एकमात्र उपाय है ।

—त्रिःशिडस्वामी श्रीमद्भक्ति मयुख  
भागवत महाराज

## नम्र-निवेदन

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति तथा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके मुखपत्र श्रीभागवत-पत्रिकाकी वर्त्तमान संख्यामें ६ और ७ दोनों संख्याएँ एकत्र मिलित होकर प्रकाशित हो रही हैं । इसका कारण यह है कि पिछले महिनेमें कार्तिक या दामोदर-व्रत पालनके उपलक्ष्यमें समितिकी ओरसे श्रीव्रज-मंडल और श्रीद्वारकाधामकी मिलित परिक्रमाका विराट आयोजन किया गया था । इसके अतिरिक्त श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा और श्रीअन्नकूटका मिलित उत्सव भी समारोहके साथ मनाया गया है । भारतके विभिन्न प्रदेशोंके भक्त इस उत्सव समारोहमें एकत्र मिलित हुए थे । इसलिये श्रीपत्रिकाकी यह वर्त्तमान युग्म-संख्या भी ६ और ७ संख्याओंके मिलितरूपमें ही प्रकाशित हो रही हैं । अत्यधिक विलम्बके कारण हम पाठकोंके निकट क्षमा-प्रार्थी हैं ।

—प्रकाशक

# श्रीश्रीब्रज-मण्डल और द्वारकाधामकी परिक्रमा और कार्तिक व्रत

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति शास्त्रीय-विधिका अवलम्बन कर प्रति वर्ष कार्तिक व्रत नियम-सेवा या उर्जव्रतके उपलक्ष्यमें भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें विविध प्रकारके भक्तिके अंगोंका पालन करती है। श्रीभागवत-पत्रिकाके वर्ष १, संख्या ७, पृष्ठ ११६ में '८४ कोस ब्रजमंडलकी परिक्रमा और उर्जव्रत' शीर्षकमें शास्त्रीय-प्रमाणोंके साथ एक लेख प्रकाशित किया गया है। हम पाठकोंसे उक्त लेखका पाठ करनेके लिए अनुरोध करते हैं।

आजकल ब्रजमण्डलके विभिन्न स्थानोंमें बहुतसे साधु-संन्यासी तथा बाबाजी आदि धर्मयाजकगण आत्मकल्याण और जगत् कल्याणके लिए साधनमें निरत हैं। परन्तु खेदका विषय है, उन लोगोंमें से अधिकांश कार्तिक व्रत, विशेषतः चातुर्मास्य पालन करनेका कष्ट स्वीकार नहीं करते। इससे आत्म और परकल्याणमें बाधा पड़ती है। व्रतोंका नियमपूर्वक पालन न किये जानेसे देशमें नाना प्रकारकी नास्तिकता और धर्म-विरोधी भावनायें पनप रही हैं। फलस्वरूप आज भारतीय लोक-सभामें साधु-संन्यासियोंका नियंत्रण करनेके लिए एक विधेयक उपस्थित करनेका साहस किया जा रहा है। यह भारतके लिए बड़े दुर्भाग्यकी बात है? इसका सर्वतोभावेन घोर विरोध किया जाना चाहिए।

इस वर्ष श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति १० अक्टूबरको हावड़ासे संरक्षित गाड़ी द्वारा यात्रा कर मन्दार, गया, काशी, अयोध्या, नैमिषारण्य हरिद्वार, ऋषिकेश, कुरुक्षेत्र, हस्तिनापुर, (दिल्ली) दर्शन कर २५ अक्टूबरको मथुरा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उपस्थित हुईं। वहाँसे मोटर द्वारा ८४ कोस ब्रज-मण्डलकी

परिक्रमा कर १३ नवम्बरको वहाँसे रवाना होकर रास्तेमें जयपुर, पुष्कर, सावित्री-तीर्थका दर्शन करती हुई १७ नवम्बरको श्रीश्री द्वारकाधाममें उपस्थित हुईं। पुनः वेद द्वारका आदिका दर्शन कर २० नवम्बरको वहाँसे रवाना होकर २२ नवम्बरको हावड़ा लौट गयी। परिक्रमाकी विस्तृत दैनन्दिनी नीचे दी जा रही है।

## परिक्रमाकी दैनन्दिनी

१७-१०-५६ हावड़ा स्टेशनसे ढाई बजे दानापुर फास्ट पैसेन्जरमें रिजर्व गाड़ी द्वारा यात्रा।

१८-१०-५६ मन्दार पर्वतपर श्रीमधुसूदनका दर्शन कर गयाके लिए यात्रा।

१९-१०-५६ सवेरे फल्गुनदीमें स्नान तथा श्रीगदाधर भगवान्के पाद-पद्मोंकी पूजाके बाद वाराणसी आगमन।

२०-१०-५६ दशाश्वमेध घाट पर गङ्गास्नानकर चैतन्य बट, बिन्दुमाधव और श्रीविश्वेश्वर (विश्वनाथ) का दर्शनकर अयोध्या धाममें आगमन। यहाँ पुण्यतोया सरयूमें स्नान, लक्ष्मण किला, श्रीरामचन्द्रजीका जन्म स्थान, तथा राम दरवारका दर्शन कर नैमिषारण्य के लिए यात्रा।

२१-१०-५६ नैमिषारण्यमें व्यासगद्दी, सूतगद्दी गौड़ीय मठ, चक्रतीर्थ आदिका दर्शनकर हरद्वारके लिए यात्रा।

२२-१०-५६ हरिद्वार, ऋषिकेश, और लक्ष्मण-भूलाका दर्शन।

२३-१०-५६ कुरुक्षेत्रके दर्शनीय स्थानोंका दर्शनकर दिल्लीके लिए यात्रा।

२४-१०-२६ सबेरे दिल्ली (हस्तिनापुर) में पाण्डव किला और अन्यान्य दर्शनीय स्थानोंका दर्शन कर मथुराके लिये यात्रा। यहाँ पर यात्रियोंने स्वतंत्ररूपमें अपने स्वर्चसे राष्ट्रपति भवन, लाल किला, जुमा मस्जिद, कुतुबमीनार, आदि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानोंका दर्शन किया।

२५-१०-२६ सबेरे मथुरा जंक्सनसे संकीर्त्तन और शोभायात्राके साथ श्रीकेशवजी गौड़ीयमठमें आगमन और विश्राम।

२६-१०-२६ कई दिनोंके थके हुए यात्रियोंने विश्राम किया।

२७-१०-२६ से १-११-२६ मथुराधामकी पंचकोसी परिक्रमा और ध्रुवटीला मधुवनकी परिक्रमा समाप्त कर मोटरसे श्रीगोवर्द्धन, राधाकुण्ड, काम्यवन, नन्दग्राम और वरषाना आदि स्थानोंमें कृष्णकी क्रीडा-स्थलियोंका दर्शनकर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पुनः आगमन।

१-३-१०-२६ मठमें लौटनेके साथ-ही-साथ श्रीश्रीविग्रह प्रतिष्ठा और अन्नकूटके आयोजनमें सभी जी-जानसे लग पड़े। ३ नवम्बरको विग्रह प्रतिष्ठा और अन्नकूट महोत्सवका दिन निर्धारित किया गया था। इस थोड़े समयमें विराट आयोजन करना था। समितिके सेवकोंकी कार्यकुशलता और तत्परता देख कर सभी लोग दंग रह गये। इसका विस्तृत विवरण 'श्रीश्रीविग्रह-प्रतिष्ठा' और 'श्रीअन्नकूट महोत्सव' शीर्षक में दिये गये पृथक-पृथक दो लेखोंमें देखना चाहिए।

४-११-२६—३ नवम्बरको श्रीश्रीविग्रह-प्रतिष्ठा और अन्नकूट महोत्सवके उपलक्ष्यमें दिन-रात परिश्रमसे थके-माँदे यात्रियों और मठके सेवकोंने मठमें ही विश्राम किया।

५-११-२६ प्रसादसेवाके बाद ३ बजे दिनमें मोटर द्वारा प्राचीन गोकुल ब्रह्माण्ड घाट आदि दर्शनीय स्थानोंका दर्शन कर संध्याके समय वृन्दावनमें मीर्जापुर-वाली धर्मशालामें ठहरे।

६-११-२६ वृन्दावनकी पंचकोसी परिक्रमा।

७-११-२६ वृन्दावनके प्रसिद्ध मंदिरों तथा बेलवन का दर्शन।

८-११-२६ वृन्दावनसे पैदल यात्राकर अक्रूर घाट आदि तीर्थस्थानोंका दर्शन करते हुए श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा लौट आए।

८-११-२६—१२-११-२६ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ में इन ५ दिनों तक यात्रियोंने प्रतिदिन सुबह और शामको संकीर्त्तन, प्रवचन, और वक्तुता द्वारा हरिकथा तथा छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्ण और श्रीचैतन्य महाप्रभु की लीला-कथाओंका श्रवण किया।

१३-११-२६ संध्याके साढ़े छः बजे मथुरा कैन्टसे छोटी लाईन (मीटर गेज) की गाड़ीसे जयपुरके लिए यात्रा।

१४-११-२६ खूब भोरमें ही जयपुर रेलवे स्टेशनसे निकट ही स्टेशन धर्मशालामें जाकर ठहरे। शामको समस्त यात्री ३० ताँगों पर सवार होकर वहाँके समस्त दर्शनीय स्थानोंका दर्शन कर आए।

१५-११-२६ सबेरे-सबेरे प्रसाद पाकर ६॥ बजे संरक्षित गाड़ीसे अजमेरके लिए यात्रा तथा २॥ बजे अजमेर पहुँचकर वहाँसे मोटर द्वारा पुष्करका दर्शन कर पुनः अजमेर लौटना। १ घंटेके भीतर ही प्रसाद पाकर ८॥ बजे संरक्षित गाड़ीसे द्वारकाके लिए यात्रा।

१७-११-२६—३ बजे दिन में श्रीश्रीद्वारका-धाम पहुँचे। वहाँ गोमती गंगामें स्नानकर संध्याके पहले ही द्वारकाधीशका दर्शन किये। यहाँ प्रत्येक यात्रीको ४ आना यात्रीकर देना पड़ता है। कर वसूल करनेके लिए नगरपालिकाकी ओरसे कुछ कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं। इनका आफिस स्टेशनके पास ही है। इन लोगोंने यात्रियोंसे स्टेशनपर ही कर वसूल कर लिया। यात्रियोंने द्वारकाधीशके दर्शन और उनकी परिक्रमा करनेके बाद श्रीमन्महाप्रभुजीकी भोग-आरती दर्शन कर प्रसाद पाया और रातके १०॥ बजे ट्रेनसे बेट द्वारकाके लिए रवाना हो गए। बेटद्वारका ओखा से जाना पड़ता है। रात ११॥ बजे गाड़ी ओखा स्टेशन पहुँचने पर यात्रीदल वहीं उतर पड़ा। रात स्टेशन पर ही कटी।

१८-११-५६ सुबहमें तीन बड़ी-बड़ी नावोंसे समुद्र पार कर बेट द्वारका पहुँचना। फिर द्वारकाधीराका दर्शन कर ६। बजे तक ओखा लौट आना। समुद्रकी हवा अनुकूल होनेसे जाने-आनेमें अधिक समय न लगा। वहाँसे प्रसाद पाकर ११ बजे संरक्षित गाड़ीसे भीरमगाँवके लिए यात्रा की गई। भीरमगाँवसे बड़ी लाइनकी गाड़ीसे कलकत्ते ( हावड़ा ) जानेकी बात थी। किन्तु रेल-कम्पनीकी व्यवस्थामें कुछ अदल-बदल होनेके कारण परिक्रमा-संघको वहाँ एक दिन रुकना पड़ा।

२०-११-५६ खूब भोरमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के लिए संरक्षित गाड़ीसे यात्रीलोग हावड़ाके लिए रवाना हुए तथा २२ नवम्बरके १० बजे दिनमें हावड़ा स्टेशन पर उतर कर समितिके सभ्यवृन्दको कृतज्ञता-सूचक धन्यवाद देते हुए अपने-अपने घर चले गए। समितिके व्यवस्थापक महाराज भीरमगाँवमें यात्रियों को संरक्षित गाड़ीमें चढ़ाकर उनसे विदाई लेकर मथुराके लिए रवाना हुए।

## श्रीश्रीविग्रह-प्रतिष्ठा

३ नवम्बरके भोरसे ही श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजी की विग्रह-प्रतिष्ठाका आयोजन खूब जोरोंसे चलने लगा। सबेरे ८ बजेसे अनुष्ठान आरम्भ हुआ। त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्ति कुशल नरसिंह महाराज, त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिदेशिक आचार्य महाराज, त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज, त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज और त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज आदि त्रिदण्डसंन्यासीगण तथा श्रीपाद अधोक्षजदास बाबाजी, श्रीपादरसराज ब्रजवासी, श्रीपादसुदामरुखा ब्रह्मचारी, बेगमपुर निवासी श्रीपाद सनातनदास अधिकारी, नरमा निवासी श्रीपाद मोहिनीमोहन रागभूषणजी, पूर्वचक्रके निवासी श्रीपाद गिरिधारीदास अधिकारी ( गिरीश बाबू ) और श्रीपाद भुवनमोहनदास अधिकारी आदि विशिष्ट महोदयगण उस अनुष्ठानमें उपस्थित थे। समितिके सभापति परमहंस स्वामी १०८ श्रीश्री मद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके निर्देशानुसार त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज और श्रीपाद रसराज ब्रजवासी क्रमशः पुरोहित और यजमानके रूपमें गृहीत हुए।

विशाल-विशाल दोनों विग्रहोंको अभिषेककी वेदी पर पधराया गया। पांचरात्र और हरिभक्ति-विलासकी विधियोंके अनुसार श्रीविग्रहोंके अंगोंमें धी, दग्धदि पचामृत, हरिद्रा, चन्दन और कुंकुम आदि विविध प्रकारके मांगलिक और सुगन्धित द्रव्य लेपन किये जानेके पश्चात् श्रीयमुनाके पवित्र जलसे भरे हुए १०८ घड़ोंसे उन्हें स्नान कराया गया। उस समय संन्यासियोंके मंत्र-पाठकी ध्वनिसे अभिषेक मंडप मुखरित हो उठा। पास ही वैष्णव होमकी शिखाएँ मंडप-वितानका बार-बार चुम्बन करने लगीं तथा उसके 'स्वाहा, स्वाहा' शब्द मधुर-मधुर संकीर्तन की स्वर-लहरियोंमें डूबने-उतराने लगे। दर्शक मुग्ध होकर एकटक अभिषेकका दर्शन कर रहे थे। स्नान करानेके पश्चात् दोनों विग्रहोंको गर्भ-मंदिरके सिंहासन पर स्थापन करना अतीव दुरुह काम था। किसी तरह उन्हें सिंहासन पर पधराये जाने पर परमहंस उर्ध्विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने गर्भ मन्दिरमें प्रवेश कर दोनों विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा की और भोग निवेदन कर बाहर निकले। उनके बाहर निकलते ही जय-ध्वनि, उलू-ध्वनि ( छियोंके मुखसे निकली हुई एक प्रकारकी मांगलिक ध्वनि ) तथा शंख-ध्वनिसे मठ-प्रांगण गूँज उठा। इसी समय महासंकीर्तनके बीच मंदिर

का पट खुला । दर्शकोंकी अपार भीड़ पुनः-पुनः 'जय श्रीराधाविनोदविहारीजीकी जय' ध्वनि करने लगी । लावण्यकी घनमूर्त्ति श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजी कृपाकर भक्तोंको अपना परम मनोहर दर्शन देकर कृतार्थ करने लगे । श्रीमन्महाप्रभु पहलेसे ही यहाँ प्रतिष्ठित हैं अतः कोई-कोई श्रीश्री गुरुगौराङ्ग गान्धर्विका गिरिधारीजीकी भी जय देने लगे ।

भारतके अधिकांश मंदिरोंमें श्रीकृष्णकी कृष्ण-वर्णकी शैलीमूर्त्तियाँ ही देखी जाती हैं, किन्तु यहाँ पर श्वेत शैलीमूर्त्ति अतीव आकर्षक होने पर भी दर्शकोंके हृदयमें नाना प्रकारके प्रश्न उठ सकते हैं— अनुमानकर विग्रह प्रतिष्ठाता परमहंस और्विष्णुपाद

१०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज जीने निम्नलिखित श्लोक उच्चारणपूर्वक तथा उसकी व्याख्या कर उक्त विषयकी सुन्दर मीमांसा कर दी ।

राधा-चिन्ता निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता ।  
श्रीकृष्ण-चरणं वन्दे राधालिङ्गित-विग्रहम् ॥

अर्थात्, श्रीमती राधारानीके मान करने पर उनके विरहमें अतिशय निमग्न होने के कारण जिनकी कृष्णवर्णरूप कान्ति विलुप्त होकर श्रीराधा जैसा हुई थी, उन राधाके चिह्नोंसे (कान्तिसे) युक्त विग्रह—श्रीकृष्ण के चरण-कमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ, अथवा (मान भंग होने पर) श्रीमतीराधा द्वारा आलिङ्गित श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ ।

## आसुरी-प्रवृत्ति

कलिकालमें हममें से कोई-कोई विष्णुभक्तिसे रहित होकर आसुरी-प्रवृत्तिका परिचय दिया करते हैं । किन्तु उससे हमारा मंगल होना दूर रहे, हम श्रीविष्णु और वैष्णवोंके चरणोंमें अपराधी हो पड़ते हैं । हमारी आसुरी प्रवृत्तिका आदर कभी सत्-समाजमें नहीं हो सकता । साधु समाज जब हमारा अनादर करने लगेगा, तब हम अनुत्पन्न होकर आसुरी प्रवृत्तिसे छुटकारा पावेंगे । वैष्णवोंके चरणोंमें अपराधी होने पर असुर-स्वभाव-सम्पन्न होकर हम लोगोंमें से कोई-कोई अनेक प्रकारके अयथा उपातोंका आवाहन करते हैं । हमारे असुर-स्वभावके साथ सच्छास्त्रकी बातोंका मेल न खाने पर हम शास्त्रकी निन्दा करते हैं, कभी-कभी शास्त्र के प्रदर्शित सत्यका उल्लंघन करके महाभारतको फाड़ फेंकते हैं, साक्षात् भगवन्मूर्त्ति श्रीभागवतको कुद्व नहीं समझते और इन सब शास्त्रोंको कीचड़में फेंक देनेके लिए कहते हैं । ये ही हमको विष्णु-भक्तिसे चिरकालके लिए असुर-संप्रदाय में गिराते हैं । फिर शास्त्रोक्ति द्वारा हमारे असुर होनेकी बात प्रतिपादित होने पर हम आप-ही-आप असन्तुष्ट होते हैं । अब आइए देखें, हम देवता भी हो सकते हैं

और असुर भी बन सकते हैं या नहीं । विष्णु व वैष्णवोंमें श्रद्धायुक्त होकर विष्णु और वैष्णवों की सेवा करनेसे ही हम वैष्णवोंके दास देवता ब्राह्मण हो सकते हैं । और भागवत, महाभारत आदिका अपमान करने पर हम देवकुलमें जन्म ग्रहण करके भी, कश्यपकी सन्तान होकर भी, हम असुर हो पड़ते हैं । विश्रवा ऋषिके पुत्र होकर भी सीता-हरणमें हमारी प्रवृत्ति होती है । अधासुर, बकासुर, पूतना होकर हम कृष्णसे विद्वेष करते हैं । जगाई, माघाई होकर ब्राह्मणकुलके भी कलंक बन जाते हैं । हमारी राक्षसी-प्रवृत्तियाँ अच्छी नहीं हैं ।

कलिकालमें विष्णुभक्ति बहुत ही विरल देखी जाती है । विष्णु-भक्तिके नाम से निवृद्धिता और आसुरिक प्रवृत्तिका पोषण कभी जीवके लिए मंगलप्रद नहीं होता । हम आसुरी प्रवृत्तिके बशीभूत होकर यदि वैष्णवोंसे द्वेष या गुरुका अनादर करेंगे तो हमारा जन, धन और पाण्डित्य आदि सब वृथा हैं; अतएव हमें आसुरी प्रवृत्तिका त्याग कर देवी प्रवृत्ति ग्रहण करनी चाहिए । यही कल्याण का मार्ग है ।

# श्रीअन्नकूट महोत्सव

३ नवम्बरको श्रीश्रीविग्रह प्रतिष्ठाके साथ-ही-साथ श्रीश्रीअन्नकूटका विराट आयोजन किया गया था। वर्तमान वर्षका वैशिष्ट्य यह रहा कि श्रीश्रीराधाविनोद-विहारीजी प्रतिष्ठित होते ही मठ सेवकोंसे २६४ प्रकारके भोग आकर्षण किये थे। श्रीश्रीगोवर्द्धन गिरिधारी-

जी, श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग एवं श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजी को विविध प्रकारकी भोग-सामग्रियाँ निवेदन कर भोगआरती-कीर्त्तन करनेके पश्चात् ३ बजेसे लेकर रातके १२ बजे तक सर्व-साधारणको महाप्रसाद वितरण किया गया।



अन्नकूटके उपलक्ष्यमें श्रीश्रीगोवर्द्धन गिरिधारीजी, श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग तथा श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीको निवेदित भोगका एक अंश

## कंगाली भोजन

भोगारती समाप्त होनेके साथ-साथ दल-के-दल हीन-दुःखी और कंगाली एकत्रित होने लगे। इन लोगोंको प्रचुर परिमाणमें अर्थात् जो जितना खा सके, खिचड़ी शाक, भाजी, चाटनी, लड्डू और खीर आदि परोसा जाने लगा। लगभग १००० कंगालियोंने प्रसाद पाया।

## स्थानीय शिक्षित और संभ्रान्त महोदयोंका योगदान

हमें यह सूचित करते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि हमने विगत वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष अधिक रूपमें स्थानीय शिक्षित एवं संभ्रान्त महोदयोंकी सहायता पायी है। लगभग २ हजार व्यक्तियोंने इस अनुष्ठानमें अपना योगदान किया था। हमने विचित्र प्रसाद

आदि द्वारा सबकी अभ्यर्थना की है। मठके आचार-प्रचार तथा विचार-व्यवस्थाको लक्ष्यकर सभी मुग्ध हुए हैं। उपस्थित सज्जनोंमें श्रीयुत कृष्णदत्त बाजपेयी अध्यक्ष मथुरा संग्रहालय, श्रीयुत शर्मनलाल अग्रवाल एम० ए० एल-एल० बी०, श्रीयुत हैमन्द्रकुमार बी० एस० सी०, एल-एल० बी०, कैप्टेन ताराचन्द्रजी (अवसर प्राप्त), श्रीयुत मुल्कराज वर्मा एस० डी० ओ० एम० ई० एस०, श्रीयुत कृष्ण चन्द्र दास (डैम्पियर नगर) डा० ओ३म् प्रकाश गुप्ता, मेडिकल ऑफिसर मथुरा जिला अस्पताल तथा डा० श्रीवास्तव, सहायक मेडिकल ऑफिसर, मथुरा जिला अस्पताल आदिके नाम उल्लेखनीय है। हम इन उपस्थित महोदयोंको विशेषकर कैप्टेन ताराचन्द्रजी, श्रीयुत मुल्कराज वर्माजी तथा श्रीयुत कृष्णचन्द्रजीको इस अनुष्ठानमें इनके सक्रिय योगदानके लिये धन्यवाद ज्ञापन कर रहे हैं।

# ब्रह्ममय श्रीचैतन्य महाप्रभु

जय जय श्रीचैतन्य महाप्रभु,

जय करुणावरुणालय ॥

अग-जग जड़-जङ्गमके कारण, चेतन नित्य प्रबुद्ध भूतिमय ।

अविनाशी, ज्योतिर्मय, शाश्वत, उद्भव-रहित नित्य ब्रह्ममय ।

कृपा-कोटि धनु-ज्यासे रक्षित यह जग-जीवन अक्षय ।

जय करुणावरुणालय ॥

गगन-विहग रवि ज्योति-पंख-धर, चन्द्र-कलश ज्योतनाका मधु-मग ।

नित्य दिशाओंमें गाते हैं, गीत सितारे रात-रात जग ।

सबको तेरी मधुर पुत्रकसे सिहराता है मलय ।

जय करुणावरुणालय ॥

तेरी पुण्य पुनीत धरा पर, तेरे गीत सदा गाते जो ।

तेरे उस औदार्य भवका मर्म कहीं कुछ पा सकते वो ।

भक्तोंको ही भावसे करते तुम हो, हे प्रभु ! निभय ।

जय करुणावरुणालय ॥

भटके जगको सत्य धर्मकी राह दिखाने तुम युग-युगमें ।

हुए अवतरित कला-निचयसे सज्जित हो जीवनके मगमें ।

पुण्य प्रभूत हुए जब संचित, हुआ तुम्हारा समुदय ।

जय करुणावरुणालय ॥

क्लेशयुक्त, कलुषायत भव जब पाप-निपीडित जीवन तन्द्रित ।

दैन्य हुआ उत्थित, सोया सब धर्म, सत्य का प्रांगण पंकित ।

प्रकटित पुण्य-प्रभात ! रात्रिहर ! गौर-वपुष ! तुम चिन्मय ।

जय करुणावरुणालय ॥

जगी चेतना सोये मनमें होने लगा विभोर विश्व सब ।

जन-संकुल नगरों-ग्रामोंमें 'हरि-हरि' कीर्तनका उठता रव ।

लगा नाचने प्रभुका सुन्दर भावावेशित नव स्वरूप वय ।

जय करुणावरुणालय ॥

राधाकृष्ण मिलित विप्रह, नित ब्रज-भावोंका आस्वादन प्रिय ।

करते पार्षद अनुचर जग-जन, भक्तिगङ्गा लहराई सक्रिय ।

प्रभुके श्रीचरणोंमें मानव कोटि-कोटि थे तन्मय ।

जय करुणावरुणालय ॥

कलियुग तरण हेतु अति कोमल सरल पथ निर्मित कर सुन्दर ।

हे चैतन्य महाप्रभु-तुमने किया विशद उपकार विश्व पर ।

रहे बोलता युग २ तक यह जगत् तुम्हारी जय ज्योतिर्मय ।

जय करुणावरुणालय ॥

—शरद्विहारी गोस्वामी 'अभय'

एम०ए०, साहित्यरत्न

# जैव-धर्म

[ पूर्व प्रकाशित वर्ष २, संख्या ५, पृष्ठ ४०८ से आगे ]

यादवदास—‘यदि गृहस्थ-भक्त इतने पूज्य और प्रिय हैं, तब कोई-कोई भक्त गृहस्थ भक्त गृहत्याग क्यों करते हैं?’

अनन्तदास—‘गृहस्थ भक्तोंमें ही कोई-कोई गृह-त्यागी वैष्णव होनेके अधिकारी होते हैं। जगतमें उनकी संख्या खूब कम है। ऐसे त्यागी भक्तोंका संग दुर्लभ होता है।’

यादवदास—‘कृपया यह बतलाइये कि गृहत्यागी होनेका अधिकार कैसे प्राप्त होता है?’

अनन्तदास—‘मनुष्यमें दो तरहकी प्रवृत्तियाँ होती हैं—पहली, बहिर्मुख-प्रवृत्ति और दूसरी अन्त-मुख-प्रवृत्ति। वैदिक भाषामें इन्हें पराक् और प्रत्यक् वृत्ति कहते हैं। शुद्ध चिन्मय आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर लिंग देहके अन्तर्गत मनको ही आत्मा मानती है। मन इन्द्रियोंके द्वारा बाह्य विषयोंकी ओर दौड़ता है; इसीका नाम ‘बहिर्मुख-प्रवृत्ति’ है। जब प्रवृत्तिकी गति जड़ विषयोंसे पलट कर मनकी ओर और मनसे आत्माके प्रति प्रवाहित होने लगे, तब उसे अन्तमुख प्रवृत्ति कहते हैं। जब तक बहिर्मुख प्रवृत्ति प्रबल रहे, तब तक सत्संगमें रहने तथा कृष्ण-संसार स्थ पन कर समस्त प्रवृत्तियोंको निरपराध भावसे संचालन करने की आवश्यकता है। कृष्ण-भक्तिका व्याख्य करनेसे बहिर्मुख-प्रवृत्ति क्रमशः संकुचित होकर अन्तमुख हो जाती है। जब प्रवृत्ति सम्पूर्ण रूपसे अन्तमुख हो जाय, तभी गृहत्याग करनेका अधिकार होता है। ऐसी

अवस्था प्राप्त होनेके पहले ही यदि गृहत्याग किया जाय, तो पतनकी विशेष आशंका रहती है। गृहस्था-भ्रम जीवोंके लिए एक पाठशाला स्वरूप है, जहाँ बह परमार्थ तत्त्वकी शिक्षा प्राप्त करता है तथा आत्म-तत्त्वको विकशित करनेका सुयोग पाता है। शिक्षा समाप्त हो जानेपर पाठशाला परित्याग करना चाहिए।’

यादवदास—‘गृहत्यागी भक्तोंका क्या लक्षण है?’

अनन्तदास—‘स्त्री-संगकी स्पृहाका न होना, प्राणि मात्र पर दयाभाव होना, अर्थ-व्यवहारको तुच्छ समझना, केवल जीवन निर्वाहोपयोगी प्रासाच्छदानके लिए यत्न करना, कृष्णके प्रति विशुद्ध प्रीति होना, बहिर्मुख लोगोंके संगसे दूर रहना और जीवन-मरण में राग-द्वेषका न होना—गृहत्यागी भक्तोंके लक्षण हैं। श्रीमद्भागवतमें उनका लक्षण इस प्रकार दिये हैं—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ (क)

( श्रीमद्भा० ११।२।४६ )

मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये ददाम्।

मत्कृते त्यक्त-कर्माण्यस्त्यक्त स्वजन-वान्धवाः ॥ (ख)

( श्रीमद्भा० १।२।२२ )

विस्मृति हृदयं न यस्य साक्षाद्-

हरिरवशाभिहितोऽप्यधौघनाशः।

प्रणयरसनया घृताङ्घ्रिपद्मः।

स भवति भागवत प्रधान उक्तः ॥ (ग)

( श्रीमद्भा० ११।२।५६ )

(क) जो समस्त भूतोंमें आत्माके आत्मा स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रको देखते हैं और आत्माके आत्मा स्वरूप श्रीकृष्णमें सर्वभूतको देखते हैं, वे उत्तम भागवत हैं।

(ख) कपिलदेवजी यहाँ पर साधुका स्वरूप-लक्षण बतला रहे हैं—जो लोग अन्यान्य देवदेवियोंकी पूजामें आस्था न रखकर मुझमें अनन्यभावे सुदृढ़ भक्ति करते हैं, वे मेरे लिए सम्पूर्ण कर्म तथा स्त्री, पुत्र, वन्धु, वान्धव आदि अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी त्याग देते हैं।

(ग) विवशतासे भी जिनका नाम उच्चारण करते ही जीवोंके सब पाप दूर हो जाते हैं, उन हरिके पाद-पशोंको जिन्होंने प्रेमकी डोरसे अपने हृदयमें बाँध रखा है, वे पुरुष भगवान्के भक्तोंमें प्रधान हैं।

जिन गृहस्थ भक्तोंमें ये लक्षण-समूह प्रकाशि हो पड़ते हैं, वे अब कर्म करनेके लायक नहीं रहते। इसलिए वे गृहत्यागी हो पड़ते हैं। ऐसे निरपेक्ष भक्त विरले होते हैं। सारे जीवनमें भी यदि कभी ऐसे भक्तोंका संग मिल जाय तो अपना परम सौभाग्य समझना चाहिए।

यादवदास—‘आजकल प्रायः देखा जाता है कि कोई-कोई थोड़ी उम्रमें ही गृहत्याग कर वेश ग्रहण कर लेते हैं। फिर आखाड़ा बाँध कर देव-सेवा करने लगते हैं। धीरे-धीरे उनमें स्त्रीसंगका दोष प्रवेश कर जाता है। फिर भी वे हरिनाम नहीं छोड़ते। जगह-जगह से भीख माँगकर आखाड़ेका खर्च चलाते हैं। ऐसे लोगोंको त्यागीभक्त कहा जायगा अथवा गृहस्थ भक्त ?’

अनन्तदास—‘तुमने बहुतसी बातें एक ही साथ पूछी है। मैं एक-एकका उत्तर दूँगा। गृहत्यागसे थोड़ी या अधिक उम्रका कोई सम्बन्ध नहीं है। पूर्व और वर्तमान, संस्कारोंके बलसे कोई गृहस्थ-भक्त कम उम्रमें ही गृहत्यागका अधिकारी हो जाता है। शुक्र-देवजी पूर्व संस्कारोंके कारण जन्मसे ही गृहत्यागके अधिकारी थे। केवल इतना ही देखना चाहिए कि वह अधिकार कृत्रिम न हो। यथार्थ निरपेक्षता उत्पन्न होनेपर कम उम्रसे कोई बाधा नहीं पड़ती।’

यादवदास—‘यथार्थ निरपेक्षता और कृत्रिम निरपेक्षता किसे कहते हैं ?’

अनन्तदास—‘यथार्थ निरपेक्षता, उस दृढ़ निरपेक्षताको कहते हैं, जो किसी समय टूटती नहीं। कृत्रिम निरपेक्षता प्रतिष्ठाकी आशा, धूर्तता और शठतासे पैदा होती है। निरपेक्ष गृहत्यागी भक्तोंसा सम्मान पानेके लिए कोई-कोई कृत्रिम निरपेक्षताका स्वांग भरते हैं। किन्तु ऐसी निरपेक्षता विलकुल निरर्थक और अमङ्गलजनक होती है। गृहत्याग करनेके साथ ही ऐसी निरपेक्षता दूर हो जाती है और उपद्रव उपस्थित हो जाते हैं।’

यादवदास—‘क्या गृहत्यागी भक्तको वेश लेना आवश्यक है ?’

अनन्तदास—‘संसारकी माया ममतासे दूर हो जानेपर निरपेक्ष अविश्वन भक्त वनमें रहें अथवा घरमें, जगत्को पवित्र करते हैं। उनमें कोई-कोई भिक्षुक-आश्रमके चिह्नों द्वारा परिचित होनेके लिए कौपीन-कन्था आदि धारण करते हैं। कौपीन-कन्था ग्रहण करनेके समय कुछ लोग गृहत्यागी वैष्णवोंकी साक्षी देकर अपनी प्रतिज्ञा दृढ़ करते हैं। इसीका नाम ‘भिक्षाश्रम प्रवेश’ है। यदि तुम इसीको ‘वेश-लेना’ कहते हो तो कोई आपत्ति नहीं है।’

यादवदास—‘भिक्षाश्रमोचित चिह्नों द्वारा परिचित होनेकी आवश्यकता ही क्या है ?’

अनन्तदास—‘जगत्में भिक्षाश्रमीके नामसे परिचित होने बहुतसे लाभ हैं। परिवारके लोग उससे सम्बन्ध न रखेंगे बल्कि सहजी ही उसे छोड़ देंगे। स्वयं भी उसे फिरसे गृहमें प्रवेश करनेकी इच्छा न होगी। स्वाभाविक निरपेक्षताके साथही लोक-भय भी उसके हृदयमें उपस्थित होगी। परिपक्व निरपेक्ष गृहत्यागी भक्तोंके लिए वेश-ग्रहण, चाहे किसी कामका हो या न हो, किन्तु किसी-किसीके लिए वेशाश्रय कुछ-कुछ सहायक होता है। ‘स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्’। ( श्रीमद्भाग० ४।२।४६ ) अर्थात् ‘भगवत्कृपा प्राप्त भक्त लौकिक या वैदिक सभी प्रकारके कर्मोंके प्रति आसक्ति परित्याग करते हैं—ऐसे भक्तोंके लिए वेशाश्रयकी विधि नहीं। उनको केवल लोक अपेक्षा तककी आवश्यकता होती है।’

यादवदास—‘वेशाश्रय किससे ग्रहण करना चाहिए ?’

अनन्तदास—‘गृहत्यागी वैष्णवोंसे वेशाश्रय ग्रहण करना चाहिए। गृहस्थ-भक्तोंको गृहत्यागी भक्तोंके व्यवहारोंका अनुभव नहीं होता, इसलिए उन्हें किसी को भी गृहत्यागीका वेश न देना चाहिए। क्योंकि ब्रह्मवैवर्तका कथन है—

‘अपरीच्योपदिष्टं यत् लोकनाशाय तद् भवेत्।’

अर्थात् स्वयं आचरण न करके धर्मोपदेश करनेसे वह जगत्में उत्पातका कारण होता है।’

यादवदास—‘भेक या वेशाश्रय प्रदान करनेके समय गुरुदेवको किन-किन विषयोंका विचार करना चाहिए?’

अनन्तदास—‘सर्वप्रथम गुरुदेव यह विचार करेंगे कि जिस व्यक्तिको वे वेश देने जा रहे हैं वह उपयुक्त पात्र है या नहीं? उसने गृहस्थ भक्त होकर कृष्णभक्तिके बलसे शम-दमादि ब्रह्म-स्वभाव प्राप्त किया है कि नहीं? स्त्री-सङ्गकी स्पृहा दूर हुई है अथवा नहीं? अर्थ-पिपासा और जीह्वाकी लालसा निर्मूल हुई है या नहीं? वे कुछ दिन तक शिष्यको अपने निकट रख कर उसकी अच्छी तरह परीक्षा करें। जब उसे उपयुक्त पात्र समझें तब उसे भिक्षाश्रमका वेश प्रदान करें। इससे पहले किसी तरह वेश देना उचित नहीं है। अनुपयुक्त पात्रको वेश देनेसे गुरुका पतन होना अवश्यम्भावी है।’

यादवदास—‘अब मैं देख रहा हूँ कि वेशाश्रय ग्रहण करना कोई हँसो-खेलकी बात नहीं है। इस प्रथाको अयोग्य गुरुओंने अब व्यावहारिक करना आरंभ कर दिया है। कहा नहीं जा सकता, अन्त तक कैसी अस्वथा हो?’

अनन्तदास—‘श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने इस पद्धति को पवित्र रखनेके लिए नितान्त छुद्र दोष करने पर भी छोटे-हरिदासको कठोर दण्ड दिया था। हमारे प्रभुके अनुगत भक्तोंको महाप्रभु द्वारा छोटे-हरिदासको दण्ड देनेकी बात सर्वदा स्मरण रखनी चाहिए।’

यादवदास—‘वेश लेकर आखाड़ा बाँधना और देवसेवा करनी क्या उचित पद्धति है?’

अनन्तदास—‘नहीं, उपयुक्त पात्रको भिक्षाश्रममें प्रवेशकर प्रतिदिन भिक्षाद्वारा जीवन निर्वाह करना चाहिए। आखाड़ा आदिका आडम्बर नहीं करना चाहिए। वह किसी जगह किसी एकान्त कुटीमें या किसी गृहस्थके देवालयमें रहे। जिन अनुष्ठानोंमें धनकी आवश्यकता होती हो, उन अनुष्ठानोंसे उन्हें दूर रहना चाहिए। इस प्रकार जीवन-यापन करते हुए निरपराध होकर निरन्तर कृष्णनाम करना चाहिए।’

यादवदास—‘जो लोग आखाड़ा जमाकर गृहस्थ की तरह रहते हैं, उन्हें क्या कहा जाय?’

अनन्तदास—‘ऐसे लोगोंको ‘बान्तामी’ करते हैं। जिसे एकवार वमन (रुटी) कर दिया, उसीको आर-बार खाते हैं।’

यादवदास—‘क्या, अब वे वैष्णव नहीं रहते?’

अनन्तदास—‘जब उनके व्यवहार अवैध और वैष्णव-आचारके विरोधी हैं, तब उनका सङ्ग करनेसे लाभ ही क्या है? अब तो उन्होंने शुद्ध भक्तिका परित्याग कर दुराचार करना आरम्भ कर दिया। ऐसी दशामें उनके साथ वैष्णवोंका सम्बन्ध ही क्या रहा?’

यादवदास—‘जबतक वे हरिनाम त्याग नहीं करते, तबतक यह कैसे कहा जा सकता है कि उन्होंने वैष्णवता छोड़ दी है?’

अनन्तदास—‘नाम’ और ‘नामापराध’ एक चीज नहीं हैं, सम्पूर्ण पृथक्-पृथक् हैं। ‘शुद्ध हरिनाम’—‘एक चीज है और बाह्यतः हरिनामके ही समान दीख पड़ने वाला ‘अपराधयुक्त नाम’ पृथक् चीज है। जहाँ नामके सहारे पापाचार दिखलाई पड़े अर्थात् नाम भी करेंगे, पाप भी करेंगे; नामके प्रभावसे पापोंसे छुटकारा तो आखीर मिल ही जायगा—ऐसी भावनासे जो हरिनाम किया जाता है वह ‘नामापराध’ होता है, शुद्ध हरिनाम नहीं होता। नामापराधसे सर्वदा दूर रहना चाहिये।’

यादवदास—‘तब ऐसे व्यक्तियोंका संसार कृष्ण-संसार नहीं है?’

अनन्तदास—‘कदापि नहीं। कृष्ण-संसारमें शठता का स्थान नहीं है। वहाँ तो सम्पूर्णरूपमें सरलता विराजमान रहती है। वहाँ अपराध होनेकी संभावना नहीं रहती।’

यादवदास—‘तब तो वे गृहस्थ भक्तोंसे भी गये बीते हैं?’

अनन्तदास—‘जब वे भक्त ही नहीं रहे, तब किसी भक्तके साथ उनके तारतम्यका कोई प्रश्न ही नहीं उठता।’

यादवदास—‘ऐसी दशामें उनके उद्धारका क्या कोई रास्ता है ?’

अनन्तदास—‘हाँ, है । यदि वे अपने समस्त दुराचारोंका परित्याग कर निरपराध होकर रोते-रोते निरन्तर हरिनाम करें तो फिर वे भक्तोंकी श्रेणीमें आ सकते हैं।’

यादवदास—‘बाबाजी महाराज ! गृहस्थ भक्त वर्णाश्रमकी विधियोंके अधीन होते हैं । क्या वर्णाश्रम-धर्मको स्वीकार किये बिना एक गृहस्थ, वैष्णव नहीं हो सकता ?’

अनन्तदास—‘अहा ! वैष्णव धर्म अत्यन्त उदार है । जीवमात्र इस धर्मके अधिकारी है, इसीलिये इसका एक नाम ‘जैव-धर्म’ है । अन्त्यज जातिके मनुष्य भी वैष्णव-धर्म ग्रहण करके गृहस्थ रह सकते हैं । इनका वर्णाश्रम नहीं होता । फिर वर्णाश्रमके अन्तर्गत पतित संन्यासी भी पीछेसे शुद्ध भक्ति लाभ कर गृहस्थ भक्त हो सकते हैं । इनकी भी कोई वर्णाश्रम-विधि नहीं होती । अथवा जो लोग अपने दुराचारोंके कारण वर्णाश्रम धर्मसे पतित हो चुके हैं, वे और उनके संतानें आदि साधु-सङ्गके प्रभावसे शुद्ध भक्तिका आश्रय करते हुए गृहस्थ भक्त होंगे, तो इनका भी वर्णाश्रम नहीं होता । अतएव गृहस्थ भक्त दो प्रकारके होते हैं—वर्णाश्रम-धर्मयुक्त और वर्णाश्रम-धर्म-रहित ।’

यादवदास—‘इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ हैं ?’

अनन्तदास—‘जिनमें भक्ति अधिक है, वे ही श्रेष्ठ हैं । भक्तिहीन होने पर व्यावहारिक दृष्टिसे वर्णाश्रमका पालन करनेवाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें धर्म है और दूसरा अन्त्यज है ।

किन्तु पारमार्थिक दृष्टिसे दोनों ही अधम हैं, क्योंकि दोनों भक्तिहीन हैं ।

यादवदास—‘क्या किसी गृहस्थ व्यक्तिको गृह-त्यागीका वेप ग्रहण करनेका अधिकार है ?’

अनन्तदास—‘नहीं, ऐसा करनेसे आत्मवञ्चना और जगत् वञ्चना—दोनों प्रकारके दोष होते हैं । गृहस्थ व्यक्तिका कौपीन आदि धारण करना गृहत्यागी वेशाश्रमी संतोंकी दिल्लीगी उद्दाना और उनका अपमान करना है ।’

यादवदास—‘बाबाजी महाशय ! क्या वेश ग्रहण करनेके लिए कोई शास्त्र-वृद्धि भी है ?’

अनन्तदास—‘स्पष्टरूपमें नहीं है । सभी वर्णोंके लोग वैष्णव हो सकते हैं, किन्तु शास्त्रके अनुसार द्विजोंके अतिरिक्त और कोई भी संन्यास ग्रहण नहीं कर सकता । श्रीमद्भागवतमें प्रत्येक वर्णोंका पृथक्-पृथक् लक्षण बतलाते हुए अन्तमें नारदजी कहते हैं—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

( श्रीमद्भा० ७।१।३५ )

अर्थात् जिसके जो लक्षण कहे गए हैं उन्हीं लक्षणोंके द्वारा वर्णका निरूपण करना चाहिए । इस शास्त्रीय-विधिके अनुसार ही अन्य वर्णोंमें उत्पन्न व्यक्तिमें ब्राह्मणवर्णका लक्षण देखकर उसे संन्यास देने की प्रथा चली है । यदि ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्धान्य वर्णके व्यक्तियोंमें ब्राह्मणवर्णके लक्षण पाये जाँय और उन्हें संन्यास दिया जाय तो इस पद्धतिको अवश्य ही शास्त्रानुमोदित मानना होगा । यह कार्य केवल पारमार्थिक विषयमें ही बलवान है, व्यावहारिक विषयमें नहीं ।’

( क्रमशः )